भाषा शिक्षण

हिंदी | भाग–2

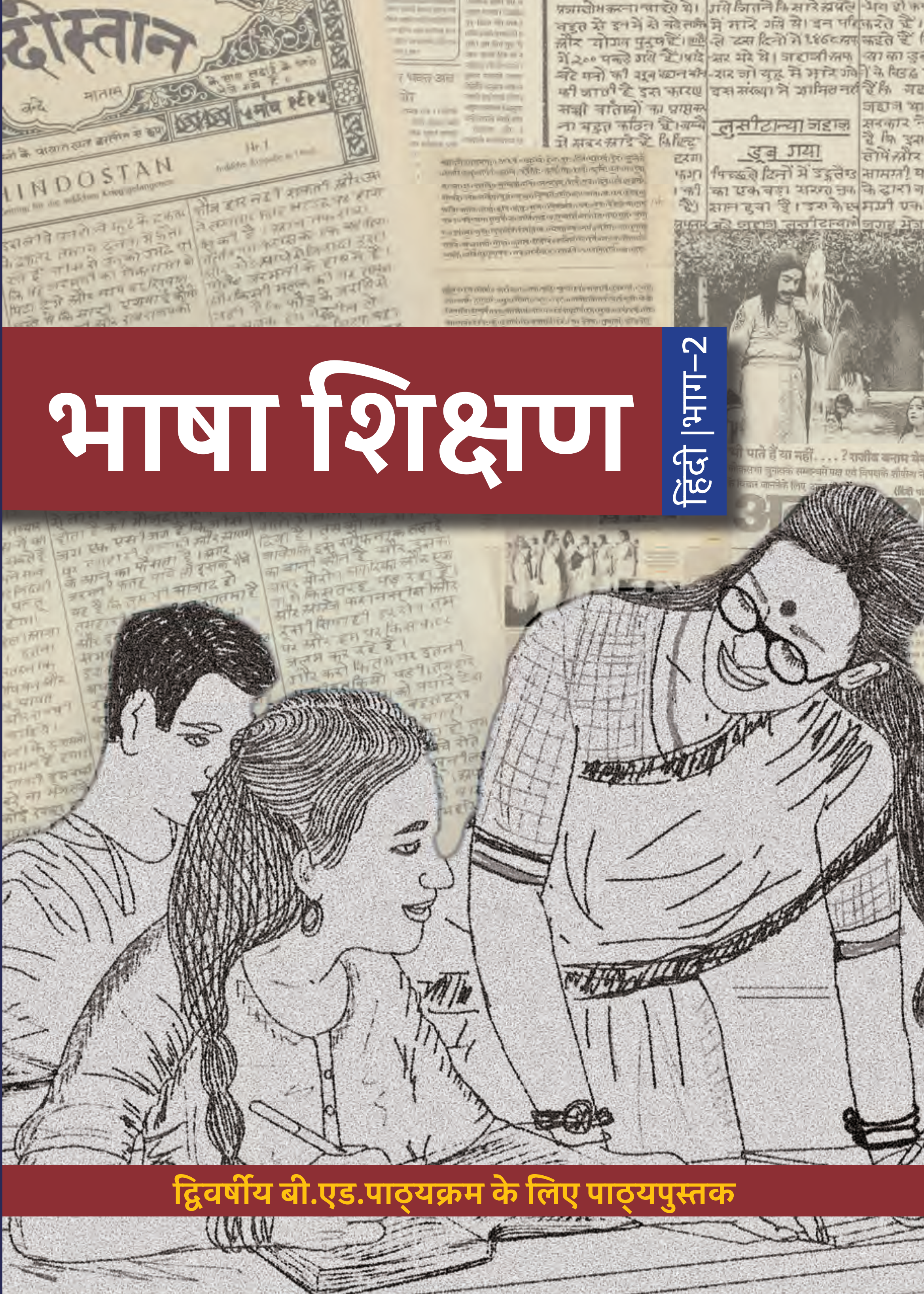

द्विवर्षीय बी.एड.पाठ्यक्रम के लिए पाठ्यपुस्तक

भाषा शिक्षण हिंदी | भाग – 2

द्विवर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम के लिए पाठ्यपुस्तक

एन.सी.ई.आर.टी.

19-Jul-19 2:55:53 P

प्यारे बच्चो!

यदि कोई आपको अनुचित ढंग से स्पर्श करे और यह स्पर्श आपको अच्छा न लगे तो, आप चुप न रहें। आप

1. स्वयं को इसका दोष न दें;
2. इस बारे में किसी ऐसे व्यक्ति को बताएँ जिस पर आप भरोसा करते हो;
3. आप **पॉक्सो ई.बॉक्स** के माध्यम से राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग को भी इस बारे में सूचित कर सकते हैं।

जब आपको कोई अनुचित ढंग से स्पर्श करता है तो आपको बुरा लग सकता है, आप दुविधाग्रस्त और असहाय अनुभव कर सकते हैं

आपको "बुरा" अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आपकी गलती नहीं है

पॉक्सो ई.बॉक्स NCPCR@gov.in पर उपलब्ध है।

नए समाज की ओर
Towards a new dawn

यदि आपकी आयु 18 वर्ष से कम है और आप मुसीबत में हैं अथवा दुविधाग्रस्त हैं अथवा आपके साथ दुर्व्यवहार किया गया है अथवा संकट में हैं अथवा किसी ऐसे बच्चे को जानते हैं...

1098 पर कॉल करें...क्योंकि कुछ अच्छे नंबर जीवन बदल देते हैं।

चाइल्ड लाइन 1098 - विपत्ति में बच्चों के लिए 24 घंटे नि:शुल्क राष्ट्रीय आपातकालीन फ़ोन सेवा, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के सहयोग से चाइल्ड लाइन इंडिया फ़ाउंडेशन की पहल है।

नए समाज की ओर
Towards a new dawn

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

Untitled-1.indd All Pages

भाषा शिक्षण

हिंदी | भाग–2

द्विवर्षीय बी.एड.पाठ्यक्रम के लिए पाठ्यपुस्तक

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

पहला संस्करण

जुलाई 2019 श्रावण 1941

PD 2T RPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2019

₹ 135.00

80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा श्री राम प्रिंटर्स, डी–6 एवं एफ़–455, सैक्टर–63, नोएडा–201301 (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

ISBN 978-93-5292-152-2

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमित के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फ़ोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रचारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशन की पूर्व अनुमित के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, और न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलुरु 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट धनकल बस स्टॉप पिनहटी
कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फ़ोन : 0361-2676869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*एम. सिराज अनवर*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*अरुण चितकारा*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*बिबास कुमार दास*
संपादन सहायक	:	*ऋषि पाल सिंह*
सहायक उत्पादन अधिकारी	:	*दीपक जैसवाल*

आवरण एवं सज्जा

श्वेता राव

आमुख

बैचलर ऑफ़ एजुकेशन (बी.एड.) का यह द्विवर्षीय पाठ्यक्रम भाषा के नए सरोकारों और सीखने-सिखाने की नयी दृष्टियों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। नयी शिक्षा दृष्टियाँ और एन.सी.टी.ई. नियमावली 2014, अध्यापकों की भूमिका में एक बड़ी तब्दीली की माँग करती है। इसके तहत सभी विषयों के प्रशिक्षु-शिक्षकों के विद्यालय में शिक्षण के अनुभवों को विशेष महत्व दिया गया है। इसके लिए आई.सी.टी. के प्रयोग, व्यावहारिक शिक्षा, नवाचारी शिक्षा, संस्थाओं का अवलोकन, शिक्षण के दौरान शोध और दीर्घकालीन कक्षा-शिक्षण (इंटर्नशिप) पर बल दिया गया है। यह पाठ्यक्रम सिद्धांत और व्यवहार के बीच एक संतुलन बनाने के प्रयास का परिणाम है।

भारत विविधताओं का देश है। वर्तमान समय में हमारी कक्षाएँ भी विविध और चुनौतीपूर्ण हैं। कक्षा-शिक्षण के दौरान भाषायी और सांस्कृतिक विविधताएँ शिक्षक को अपने शिक्षण में विविधता लाने की चुनौती भी खड़ी करती हैं, पर ये भाषायी, सांस्कृतिक और सामाजिक बहुलताएँ हमारी अनूठी विशेषताएँ हैं। इन विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और समाज से जुड़े मुद्दों को समझने और उनसे संवाद स्थापित कर सकने के रूप में, हिंदी भाषा की मौलिकता एवं विकास-आयामों की ज़रूरत है। ऐसे भाषा-अध्यापकों को तैयार करना हमारे लिए चुनौती है, जो विद्यार्थियों को शिक्षा-प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार के रूप में देखें और उनके सवालों को सुनने और समझने की ज़रूरतों को समझें। इन सब तब्दीलियों को उनके व्यवहार का हिस्सा बनाने के लिए ज़रूरी है कि अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रम में बदलाव आए।

स्कूली व्यवस्था में बदलाव की पहल तभी संभव है, जब इस व्यवस्था से जुड़े लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आए और अध्यापक की भूमिका इस व्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से भाषा शिक्षण का पाठ्यक्रम और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि भाषा पूरी शिक्षा की ज़मीन तैयार करती है। जहाँ सिर्फ़ भाषा पढ़ना सीखना नहीं, बल्कि भाषा से जुड़े नए मुद्दे, जैसे— बहुभाषिक कक्षा, समझ का माध्यम, समावेशी शिक्षा, शिक्षा में शांति और भाषा की भूमिका आदि की समझ अध्यापकों के लिए ज़रूरी है। ये बिंदु शिक्षा में व्यापक बदलाव की माँग करते हैं।

यह किताब इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर तैयार की गयी है। हमें आशा है कि यह पुस्तक अध्यापक शिक्षण के लक्ष्य को पूरा करेगी, जिससे हिंदी की कक्षा विद्यार्थी केंद्रित हो सकेगी। इस बदलाव की दिशा में सफलता तभी मिलेगी, जब पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया में आज़ादी और सृजनात्मकता को स्थान मिलेगा।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण और परिषद् इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गयी पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् ऐसी टिप्पणियों व सुझावों का स्वागत करेगी, जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
जनवरी 2019

किताब के बारे में

शिक्षा संबंधी सभी दस्तावेज़ इस ओर इशारा करते हैं कि शिक्षा ऐसी हो कि बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मिलें। भाषा की शिक्षा को समग्रता में देखे समझे बगैर चहुँमुखी विकास संभव नहीं। शिक्षा में भाषा की भूमिका को ठीक से सराहने के लिए हमें समग्रतावादी दृष्टिकोण अपनाने की ज़रूरत है। हमें इसके संरचनागत, सौंदर्यशास्त्रीय, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों को महत्व देते हुए बहुआयामी स्थिति में रखकर इसकी पड़ताल करनी होगी। सामान्यत: भाषा को शब्दकोश व कुछ निश्चित वाक्यगत नियमों के मिश्रण के रूप में देखा जाता है। यह भाषा का एक पहलू है। भाषा का दूसरा और महत्वपूर्ण पहलू वह है जहाँ भाषा बच्चे के व्यक्तित्व को रचने का काम करती है। वास्तव में भाषा शिक्षण पूरी शिक्षा की ज़मीन तैयार करती है और इस ज़मीन को सुदृढ़ बनाना भाषा शिक्षण का ही काम है।

भाषा की पढ़ाई कैसी हो? इस सवाल को सोचना-विचारना केवल भाषा शिक्षण का सवाल नहीं, बल्कि पूरी शिक्षा का सबसे अहम सवाल होना चाहिए। भाषा-शिक्षा संबंधी अद्यतन दस्तावेज़ भाषा-शिक्षा में कुछ ज़रूरी बदलाव की माँग करते हैं। नए शोध, भाषा सहित पूरी शिक्षा को समावेशी-शिक्षा के छतरी तले देखने का अवसर देते हैं। भाषा नियमों द्वारा नियंत्रित संप्रेषण का माध्यम भर नहीं है, बल्कि यह एक परिघटना है जो बड़े स्तर पर हमारी सोच, सत्ता और समता के संदर्भ में हमारे सामाजिक संबंधों को नियमित करती है।

भाषा शिक्षण संबंधी इस पाठ्यक्रम को दो भागों में बाँटा गया है। पहले भाग की कुल 5 इकाइयों को आप भाग–1 में पढ़ चुके हैं, प्रस्तुत पाठ्यसामग्री भाग–2 में कुल 6–10 तक की इकाइयों का संपूर्ण विस्तार है।

6 एवं 7 इकाई में साहित्य के विविध रूपों का परिचय तथा भाषा-साहित्य और सौंदर्य को समझने के लिए भाषा की सृजनात्मक, साहित्यिक विधाओं का परिचय, मीडिया, अनुवाद की भूमिका तथा साहित्य-शिक्षण से संबंधित विश्लेषण किया गया है। दोनों इकाइयों के शीर्षक से ही यह स्पष्ट होता है कि साहित्य शिक्षण-बिना सौंदर्य दृष्टि के संभव नहीं है। यह सौंदर्य दृष्टि– सामाजिक, आर्थिक, प्राकृतिक तथा अन्य कई तरह की संतुलन दृष्टि के साथ ही संभव है।

इकाई 8 में पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री-निर्माण और विश्लेषण के संबंध को लेकर शिक्षकों की समझ बनाना, प्रशिक्षु-शिक्षकों के लिए आवश्यक है, इसका वर्णन किया गया है कोई पाठ्यसामग्री क्यों और कैसे चुनी गयी, उसे पढ़ने-पढ़ाने का उद्देश्य क्या है? यह दृष्टि उपर्युक्त संबंध को जानने के बाद ही ठीक तरह से समझ बना पाती है।

इकाई 9 में पढ़ने-पढ़ाने की सामग्री को समझते हुए यह समझने की कोशिश की गयी है कि हमारे आस-पास जो कुछ भी मौजूद है, दरअसल वह सब पाठ्यसामग्री ही है। एक अध्यापक को उसे उपयोग करने की समझ व उसके अनुरूप नज़रिया भी विकसित करना होगा, यह विस्तार से समझाया गया है।।

इकाई 10 भाषा शिक्षण और आकलन पर केंद्रित है। आकलन को लेकर यह समझ बनाना बहुत ज़रूरी है कि आकलन सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। बच्चे को सीखने में मदद करने के लिए अपनाए गए सभी तरीके आकलन के दायरे में आएँगे।

इस पुस्तक की सभी इकाइयों में अभ्यास-प्रश्नों के साथ, शिक्षण-प्रशिक्षण के दौरान की जाने वाली गतिविधियों और परियोजनाओं को भी दिया गया है। ये अभ्यास-प्रश्न और गतिविधियाँ सुझावात्मक हैं, जो ऐसी बहुत-सी गतिविधियों के विकास में सहायक हो सकते हैं। साथ ही ये अभ्यास, पुस्तकालयों में पड़ी बहुत-सी अनछुई किताबों की दुनिया तक ले जाने को हमें विवश करेंगे और नयी पुस्तकों, नए शोधों, अखबारों व रोज़ की खबरों के प्रति भी सचेत कराने में समर्थ होंगे।

संध्या सिंह
प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष
भाषा शिक्षा विभाग

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

सदस्य

निरंजन सहाय, *प्रोफ़ेसर*, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

प्रमोद कुमार तिवारी, *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, केंद्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर, गुजरात

रवींद्र कुमार पाठक, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार

वीरेन्द्र सिंह रावत, *क्षेत्रीय सलाहकार*, सी.आई.ई., दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

शारदा कुमारी, *वरिष्ठ प्रवक्ता*, डी.आई.ई.टी., आर.के.पुरम, नयी दिल्ली

मुख्य समन्वयक

संध्या सिंह, *प्रोफ़ेसर* एवं *विभागाध्यक्ष*, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सह-समन्वयक

कीर्ति कपूर, *प्रोफ़ेसर*, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

इस पुस्तक की समीक्षा में अपना मूल्यवान समय और सहयोग देकर बेहतर बनाने के लिए अरुण कमल, *प्रोफ़ेसर,* पटना विश्वविद्यालय और अवधेश कुमार सिंह, *प्रोफ़ेसर,* अनुवाद शिक्षा विभाग, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली के प्रति हम आभार व्यक्त करते हैं।

इस पुस्तक के निर्माण में अलग-अलग स्तरों पर सहयोग के लिए, *अध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली; *अध्यक्ष,* अध्यापक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली; *अध्यक्ष,* विशेष आवश्यकता समूह शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली; *अध्यक्ष,* जेंडर शिक्षा अध्ययन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली तथा अवधेश कुमार मिश्रा, *प्रोफ़ेसर*; उषा शर्मा, *प्रोफ़ेसर*; चमन आरा खान, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*; ज्योति कोहली, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*; मीना सहरावत, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*; अनूप कुमार, *प्रोफ़ेसर*; निधि तिवारी, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*; सरयुग यादव, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*; सुबोध कुमार झा, *प्रोफ़ेसर* के भी हम आभारी हैं। भाषा संपादन के लिए हम श्याम सिंह सुशील तथा ममता गौड़, *संपादक,* संविदा, आयामी–स्तरों पर *प्रूफ़ रीडिंग* के लिए राकेश कुमार, प्रकाशन प्रभाग तथा रेखा और मोहम्मद इकबाल, *डी.टी.पी. ऑपरेटर* के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं।

विषय-सूची

आमुख *iii*

किताब के बारे में *v*

इकाई 6: भाषा-साहित्य और सौंदर्य—1 **205–222**

6.1 साहित्य के विविध रूपों का परिचय 206

6.1.1 भाषा में सृजनात्मकता 206

6.1.2 साहित्य की विधाएँ 210

6.1.3 साहित्य शिक्षण 214

6.1.4 स्कूली पाठ्यक्रम में मीडिया की भूमिका 215

6.1.5 अनुवाद और साहित्यिक लेखन 217

इकाई 7: भाषा-साहित्य और सौंदर्य—2 **223–274**

7.1 साहित्यिक अभिव्यक्ति के विविध रूपों को पढ़ना-पढ़ाना 224

7.1.1 कविता को पढ़ना-पढ़ाना 224

7.1.2 गद्य की विविध विधाओं को पढ़ना-पढ़ाना 235

7.1.3 कहानी को पढ़ना 239

7.1.4 निबंध को पढ़ते हुए 251

7.1.5 रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी और निबंध को पढ़ना-पढ़ाना 256

7.1.6 नाटक को पढ़ना-पढ़ाना 264

7.1.7 समकालीन साहित्य की पढ़ाई—कुछ संदर्भ 266

इकाई 8: पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री—निर्माण और विश्लेषण **275–308**

8.1 पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम एक, पर पाठ्यसामग्री अनेक 276

8.1.1 पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री का विश्लेषण 277

8.1.2 पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री का अंतर्संबंध 285
8.1.3 शिक्षण की विषय-वस्तु से संबद्ध शोध 298
8.1.4 पाठ को कक्षा में ले जाने की तैयारी 301

इकाई 9: पढ़ने-पढ़ाने की सामग्री 309–318

9.1 शिक्षण सामग्री 310
9.1.1 शिक्षण सामग्री की भूमिका 310
9.1.2 शिक्षण सामग्री के विविध रूप 312
9.1.3 शिक्षकों से अपेक्षा 313
9.1.4 शिक्षकों की भूमिका 316

इकाई 10: भाषा शिक्षण और आकलन 319–346

10.1 भाषा सीखने की प्रगति का आकलन 320
10.1.1 आकलन का अर्थ एवं उद्देश्य 320
10.1.2 सतत और समग्र आकलन 321
10.1.3 निर्माणात्मक और योगात्मक आकलन 323
10.1.4 आकलन संबंधी दृष्टि 324
10.1.5 शिक्षक/शिक्षिका की भूमिका 328
10.1.6 चुनौतियाँ 328
10.1.7 पोर्टफ़ोलियो 331
10.1.8 प्रश्नों का स्वरूप और भूमिका 332

इकाई

6

भाषा-साहित्य और सौंदर्य —1

6.1. साहित्य के विविध रूपों का परिचय **206**

6.1.1 भाषा में सृजनात्मकता 206

6.1.2 साहित्य की विधाएँ 210

6.1.3 साहित्य शिक्षण 214

6.1.4 स्कूली पाठ्यक्रम में मीडिया की भूमिका 215

6.1.5 अनुवाद और साहित्यिक लेखन 217

6.1 साहित्य के विविध रूपों का परिचय

हमारे आस-पास जैसे— यह दुनिया है, पेड़ हैं, पहाड़ हैं, सागर हैं, वन हैं, मनुष्य हैं, वैसे ही भाषाएँ भी हैं। जैसे और बहुत तरह से समाजविज्ञान, विज्ञान आदि के माध्यम से हम पूरी सृष्टि को जानना चाहते हैं, वैसे ही भाषा के ज़रिये, उसके विभिन्न प्रयोगों के ज़रिये भी हम समाज, सामाजिक संरचना और इतिहास को जानने का भी प्रयास करते हैं। भाषा के ज़रिये इसे जानने की प्रक्रिया एक सौंदर्य दृष्टि की माँग करती है।

अगर हम अपने आस-पास नज़र डालें तो पाएँगे कि हर जगह, हर वस्तु में जो जीवित है, कुछ न कुछ हो रहा है। सामने का पीपल का पेड़, जो सारे पत्ते झाड़ चुका था; नए लाल पत्तों से भर रहा है! क्यारी में लगा भिंडी का पौधा अपने फूल गिरा; अब बहुत छोटी-सी भिंडी बाहर ला रहा है; अमरूद के रूखे पेड़ का हरा फल धीरे-धीरे पक रहा है; आम की मंजरियाँ पहले छोटे टिकोलों में; फिर फल में बदल रही हैं और फिर उस फल की गुठली से कत्थई पत्तों वाला नन्हा पौधा... यह क्रम चलता ही रहता है। यही तो प्रकृति की सृजनात्मकता है। प्रकृति सबसे बड़ी सर्जक है।

मनुष्य ने भी प्रकृति से यह गुण सीखा। आरंभ से ही वह भी प्रकृति के साथ-साथ समानांतर सृजन करता आ रहा है। जब वह गुफ़ाओं में रहता था, तब भी उसने गुफ़ाओं की दीवारों पर तरह-तरह के चित्र बनाए। भोपाल के पास भीम बैठका (भीमबेटका) में बहुत प्राचीन गुफ़ाएँ हैं। वहाँ ऐसे चित्र हैं। इन चित्रों को पढ़ने की कला भी मनुष्य ने ही बनाई।

6.1.1 भाषा में सृजनात्मकता

मनुष्य ने तरह-तरह से अभिव्यक्ति के माध्यम बनाए, बाद में मनुष्य ने लिखना सीखा, तब उसने गीतों को लिखना शुरू किया। बोलते तो सब हैं। अलग-अलग भाषाओं में हर मनुष्य बोलता है। बहुत से लोग लिखते भी हैं। चिट्ठियाँ लिखते हैं; रोज़ के खर्च का हिसाब लिखते हैं; फ़ोन नंबर लिखते हैं; लेकिन हर आदमी कहानी नहीं लिखता; हर आदमी कविता नहीं लिखता। कविता-कहानी लिखना बाकी रोज़मर्रा के लेखन से अलग है। यहाँ तक कि डायरी लिखना, आत्मकथा या संस्मरण लिखना भी बाकी लिखने से अलग है। इसके लिए भाषा जानना ही काफ़ी नहीं है। इसके लिए भाषा को बढ़िया से जानना, निपुणता से उसका व्यवहार करना और भाषा में कुछ नया करना ज़रूरी है। सृजनात्मकता का अर्थ है, 'कुछ नया करना और नए तरीके से करना' जब हम भाषा में यह करते हैं तो उसे 'भाषिक सृजन' कहते हैं। यहाँ नयी बात को सबसे अच्छे शब्दों में, सबसे अच्छे क्रम में रखा जाता है। जैसे, शुरू में हमने पेड़ों में नए पत्ते आने की बात की। हिंदी के बड़े कवि 'निराला' इसी बात को इस तरह से कहते हैं—

रूखी री यह डाल वसन वासंती लेगी

वसंत की इसी घटना को, निराला अनेक कविताओं में रखते हैं—

फूटे हैं आमों में बौर,
भौंरे वन-वन टूटे हैं या फिर

पत्तों से लदी डाल
कहीं हरी, कहीं लाल अथवा

उग आए अंकुर जीवन,
धान, ज्वार, अरहर औ' सन,
बही पुन: गंध से पवन
पके आम की।

देखिए कि कैसे जिसे हम सब रोज़ देखते हैं, उसे निराला ने कविता में बदल दिया है। यही तो साहित्य है। 'साहित्य' शब्द का प्रयोग पहले मूलत: मनुष्य के भावों-रागों पर आधारित और उन्हें उद्वोलित-उद्दीपित करने वाली रचनाओं[1] के लिए हुआ था, पर आज इसका अर्थ-विस्तार इतना अधिक हो गया है कि हम कभी-कभी वाङ्मय-मात्र को भी 'साहित्य' कहने लगे हैं— यानी भाषा के माध्यम से जो भी व्यक्त या निर्मित होता है, सब कुछ 'साहित्य' है। चाहे वह कविता-कहानी हो, चाहे इतिहास, विज्ञान, समाजशास्त्र या कला का विवेचन, चाहे अखबार या सामान्य ज्ञान की पुस्तक ही क्यों न हों।

संस्कृत में 'साहित्य' शब्द अपेक्षाकृत बाद का है। उसकी जगह पहले से 'काव्य' शब्द का प्रयोग होता रहा है, पर हिंदी में आज-कल 'काव्य' शब्द संकुचित होकर साहित्य की एक विधा 'कविता' के लिए रूढ़ हो चुका है। संस्कृत का 'साहित्य' शब्द 'सहित' से बना है, जिसका अर्थ है 'साथ-साथ'। 'सहित' का ही भाववाचक रूप है, 'साहित्य', यानी 'साहित्य' में शब्द और अर्थ के साथ-साथ रहने का भाव है, पर यह साथ सामान्य तरह का न होकर, विलक्षण तरह का है। इसका तात्पर्य यह है कि साहित्य में खास अर्थ को खास शब्द के द्वारा ही कहा जा सकता है। वाङ्मय के अन्य रूपों से साहित्य का यह बड़ा अंतर है। उदाहरण स्वरूप, भूगोल में हम, 'हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर...' को 'हिमगिरि के सर्वोच्च शिखर पर...' आदि कई तरह से कह-लिख सकते हैं, पर 'साहित्य' में 'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर ...' ('कामायनी') को हम पर्यायवाचियों की मदद से किसी अन्य तरह से कहने लगें, तो तात्पर्य वही नहीं रहेगा, क्योंकि इस शब्द के बदलने से बिंब, छंद, लय, नाद, अलंकार-विधान आदि सब कुछ बदलने लगेगा, जिससे रचना का सौंदर्य और

1. भर्तृहरि ने इसी अर्थ में कहा था कि साहित्य-संगीत और कला से विहीन मनुष्य पूँछ-सींग से रहित होने पर भी साक्षात् पशु है— "साहित्य-संगीत-कला-विहीन: साक्षात् पशु: पुच्छविषाणहीन:।"

तात्पर्य प्रभावित होगा। जैसे— 'शिखर' के विशेषण 'उत्तुंग' में नुकीलेपन की जो ध्वनि है, वह उसके पर्यायवाची 'सबसे ऊँची' या 'सर्वोच्च' में कैसे ला पाएँगे? यह है शब्द व अर्थ के बीच बराबरी का रिश्ता। इसके साथ, साहित्य की खासियत यह भी है कि इसमें शब्द-विशेष का अर्थ-विशेष से स्थिर (फ़िक्स्ड) संबंध नहीं होता, बल्कि वह रचना-प्रसंग और अनुभूति के संदर्भ से बदलता रहता है। यही कारण है कि विज्ञान या इतिहास की तरह साहित्यिक पंक्ति या कृति का कोई एक अर्थ नहीं होता। भाषा के इस तरह के प्रयोग को कल्पनामय या सौंदर्यमूलक प्रयोग कहा जा सकता है। साहित्य की व्युत्पत्ति ('सहित') में 'हित' भी है, जिसका तात्पर्य यह निकाला गया है कि 'साहित्य' समाज के लिए हितकारी होता है या होना चाहिए।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त 'साहित्य' की तीन कोटियाँ मानी हैं—

1. सूचनात्मक साहित्य— इसके अंतर्गत उन्होंने ऐसी पुस्तकों को माना है, जिनसे हम बहुत-सी नयी बातों की सूचना पाते हैं, परंतु उनसे हमारी बोधन-शक्ति या अनुभूति बहुत कम उत्तेजित होती है।
2. विवेचनात्मक साहित्य— जानकारी बढ़ाने के अलावा हमारी बोधन-शक्ति को भी निरंतर जागरूक व सचेष्ट बनाए रखने वाली पुस्तकों को द्विवेदी जी ने 'विवेचनात्मक साहित्य' के अंतर्गत रखा है। इस प्रकार के साहित्य के मूल में हमारी विवेक-वृत्ति है, जो निरंतर भिन्न वस्तुओं, नियमों और धर्मों की विशिष्टता को स्पष्ट करती रहती है। विज्ञान, समाजविज्ञान, गणित, दर्शन, तर्कशास्त्र, इतिहास आदि तमाम ज्ञान-विधाएँ इसी श्रेणी में परिगण्य हैं।
3. रचनात्मक साहित्य— इस श्रेणी में उन्होंने ऐसी पुस्तकों को रखा है, जो ज़रूरी नहीं कि हमें नयी जानकारी ही दें, परंतु हमारी जानी हुई बातों को भी नए सिरे से कह सकती हैं और फिर भी हमें बार-बार उन्हीं जानी हुई बातों को पढ़ने के लिए उत्सुक बना सकती हैं। ये हमारे ही अनुभवों के ताने-बाने से एक नए रस-लोक की रचना करती हैं तथा हमें सुख-दुख के दुनियावी झगड़ों से ऊपर ले जाती हैं और संपूर्ण मनुष्य-जाति के और भी आगे बढ़कर प्राणिमात्र के दु:ख-शोक, राग-विराग, आह्लाद-आमोद को समझने की सहानुभूतिमय दृष्टि देती हैं। वे पाठक के हृदय को इस प्रकार कोमल और संवेदनशील बनाती हैं कि वह अपने क्षुद्र स्वार्थ को भूल कर प्राणिमात्र के दु:ख-सुख को अपना समझने लगता है— सारी दुनिया के साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है...। इससे पाठक को ऐसा आनंद मिलता है, जो स्वार्थगत दु:ख-सुख से ऊपर की चीज़ है, जिसे कुछ लोग 'लोकोत्तर आनंद' कहते हैं। यह 'साहित्य' शब्द का विशिष्ट अर्थ है, जिसे सृजनात्मक/रागात्मक/

रसात्मक साहित्य भी कहते हैं अथवा प्रचलन के हिसाब से हम वास्तविक या शुद्ध 'साहित्य' भी कह सकते हैं। शुरू में इसी अर्थ में 'साहित्य' शब्द का प्रयोग हुआ था। आज तमाम अर्थ-विस्तार के बाद भी 'साहित्य' का यह मूल अर्थ हमारे बोध का हिस्सा बना हुआ है। आमतौर पर जब हम विज्ञान-दर्शन-समाजशास्त्र आदि के समकक्ष या उसके द्वंद्व में 'साहित्य' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब हमारा आशय इसी तीसरे अर्थ से होता है। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि इसी की विधाएँ हैं। आगे हम इसी अर्थ में 'साहित्य' शब्द का व्यवहार करेंगे।

आज साहित्य को समाज-हित के लिए नियोजित करने का आग्रह पिछले सारे युगों से अधिक है। जब हम 'हित' की बात करते हैं, तो यह स्पष्ट होना चाहिए कि 'साहित्य' सीधे-सीधे हमारा या समाज का हित नहीं करता और न ही उसके लिए ज़रूरी व्यवस्था-परिवर्तन ही कर पाता है। यहाँ तक कि वह सीधे-सीधे मानव को बेहतर जीवन या जीवन-मूल्यों का उपदेश तक नहीं देता, फिर भी साहित्य उपदेश या संदेश देता है, पर कलात्मक रूप से, व्यंजना के ज़रिये, जिसे पुरानी (पितृसत्तात्मक) भाषा में 'कांतासम्मित उपदेश' कहा गया। उदाहरण स्वरूप, प्रेमचंद ने जाति के नाम पर दलित किए गए मानव-समूह की नारकीय ज़िंदगी पर 'ठाकुर का कुआँ' कहानी लिखी और यशपाल ने युग-युग से समाज में शोषण-दलन व वंचना की शिकार स्त्री की मर्मांतक पीड़ा पर 'दिव्या' उपन्यास लिखा, परंतु दोनों ने अकारण दंडित इन समूहों की दारुण समस्या के अंत के लिए अपनी तरफ़ से एक वाक्य का भी संदेश पाठक को नहीं दिया। हाँ, उन्होंने अपने अनुभूत समाज की बजबजाती सच्चाई को कथा-चित्र के रूप में इस खूबसूरत कला और यथार्थवादी कौशल के साथ हमारे सामने रख दिया है कि उसे जो भी पढ़ेगा, यदि थोड़ा-सा भी सहृदय हुआ, तो वह संवेदित हुए बिना न रहेगा। उसके भीतर भूचाल-सा आ जाएगा। उसके रोम-रोम से यह ध्वनि निकलने लगेगी कि समाज के एक बड़े समुदाय के साथ इस तरह का घिनौना भेदभाव जितनी जल्दी हो, खत्म होना चाहिए। संवेदना में कुछ और आगे बढ़े हुए पाठकों के अंदर तो यह भी ध्वनि उठेगी कि उसके लिए हमें कुछ करना चाहिए। उनमें से कुछ तो यह भी सोचने लगेंगे कि हमें इतनी बड़ी गैर-बराबरी पर टिकी हुई इस पूरी व्यवस्था को ही तहस-नहस कर देना चाहिए और समता व स्वतंत्रता पर आधारित एक नयी समाज-व्यवस्था बनानी चाहिए। इस तरह साहित्य सीधे नहीं, पर अप्रत्यक्ष रूप से व्यवस्था-परिवर्तन की सुगबुगाहट हममें जगा देता है। साहित्य जितनी गहराई से यह प्रेरणा हममें जगाता और उस दिशा में जिस तीव्रता से हमें चालित करता है, वह किसी अन्य विषय से संभव नहीं।

साहित्य को पढ़ने-देखने-सुनने से हम मानव-जीवन को गहन भाव से अनुभूत करते हैं— उसमें अपने-आपको और आस-पास के समाज एवं उसके अनुभवों को प्रगाढ़ रूप में महसूस करते हैं। मानव सामाजिक प्राणी होने के चलते अपने-आपको विविध रूपों में अभिव्यक्त करता है और उसे अन्य लोगों की अभिव्यक्ति को देखने-सुनने-समझने में रस मिलता है। यही मनोभाव साहित्य के सर्जन और आस्वादन का प्रेरक है। साहित्य की रचना करते हुए रचनाकार और उसका आस्वादन करते हुए पाठक-दर्शक-श्रोता उस उच्चतर मनोभूमि पर होते हैं, जिसमें अपने-पराये का भेद विलीन हो जाता है और मानवमात्र का अनुभव होता है। इस भूमि पर मानवमात्र या कभी-कभी प्राणिमात्र से एक सामान्य रागात्मक संबंध बन जाता है।

भाषा का शिक्षण व शोध भी साहित्य के अनुशीलन का ही गौण या पूरक अंग है। इन सारी बातों का समाहार करते हुए हम रचयिता और ग्रहीता के बीच में घटित होने वाली रचना और आस्वादन-प्रयोजन की पूरी प्रक्रिया को ही 'साहित्य' (पुराना नाम 'काव्य') कह सकते हैं। यानी, 'साहित्य' किसी ग्रंथ-रूप का पर्याय न होकर, रचनाकार के मानस में शुरू हुई सृजनात्मक अनुभूति से लेकर ग्रहीता (सामाजिक) के चित्त में निष्पन्न भाव/रस की अनुभूति तक व्याप्त वाक्मय-दृश्यमय व मानसिक क्रियामय दीर्घ व्यापार है, जिसका चरम छोर मानवीय जीवन को एकसूत्र में अनुस्यूत करने और उसमें सार्थक बदलाव लाने तक जाता है। इसी से साहित्य मानव-जीवन या समाज का दर्पण भर नहीं है, बल्कि उसकी पुन:रचना और मार्गदर्शक बनता है।

साहित्य क्या है?

साहित्य वह है, जिसका स्वरूप शब्द-अर्थ के परस्पर-प्रतिस्पर्धी (समतुल) भाव से युक्त भाषा के कल्पनामय (सौंदर्यमूलक)—बिंबात्मक प्रयोग के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जिसमें मानवीय भावों एवं जीवन-प्रसंगों व मानवीय संबंधों का चित्रण होता है तथा जो अपने साक्षात्कार-कर्ताओं (दर्शकों, पाठकों, श्रोताओं) में समतुल्य भाव-बोध या रसानुभूति जगाने की क्षमता रखता है, जिसके ज़रिये वह हमारी मनोवृत्तियों का परिष्कार करते हुए व्यापक समाज के साथ हमें संयुक्त या संपृक्त करता है तथा हमें (व हमारे जीवन को) बेहतर परिवर्तन की दिशा भी संकेतित करता है या उसकी ओर हमें प्रेरित व उन्मुख करता है।

6.1.2 साहित्य की विधाएँ

रचनाकार की संवेदना-अनुभूति और सोच-विचार की प्रक्रिया ही साहित्य के रूप में अभिव्यक्त होती है। इस प्रक्रिया के स्वरूप से अभिव्यक्त होने वाले साहित्य का स्वरूप

निर्धारित होता है, जिससे विधाओं का संबंध है। व्यक्ति, परिस्थिति, युग, विषय या प्रयोजन (लक्ष्यीभूत पाठक) के अंतर से हमारी सोच व संवेदना के अनंत रंग-रूप संभव हैं, इसलिए विधाओं की संख्या भी सीमित या निश्चित नहीं हो सकती। फिर भी, 'साहित्य' की कविता, कहानी, नाटक, निबंध आदि कुछ विधाएँ परिगणित और परिभाषित हैं। इनके अलावा भी, बहुत सारी ऐसी विधाएँ हो सकती हैं, जो किन्हीं रचनाकारों के ज़रिये आकार पा रही हों, भले उनके नाम-रूप की अब तक पहचान या चर्चा न हो सकी हो। अब तक के हिंदी-साहित्य की कुछ लोकप्रिय विधाएँ हैं—

1. काव्य-साहित्य की विधाएँ— महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य, कविता, लंबी कविता, गीत, नवगीत, प्रगीत, ग़ज़ल/शेर आदि।
2. गद्य-साहित्य की विधाएँ— उपन्यास, कहानी, लघुकथा, नाटक, एकांकी, प्रहसन, नुक्कड़ नाटक, रेडियो-नाटक, गद्य-गीत, निबंध, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, डायरी, जीवनी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, पत्र आदि। सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ दरअसल रचनाकार दिनों-दिन संवेदनात्मक बदलाव और फैलाव की भाषा तलाशता रहता है। यही कारण है अभिव्यक्ति की नयी विधाएँ भी विकसित हो रही हैं। हमारी सौंदर्यानुभूति अपनी अभिव्यक्ति की विधा और शैली भी तय करती चलती है। इसीलिए कभी-कभी अब विधाएँ एक-दूसरे से मिली-जुली रहती हैं तो कभी एक बिलकुल नए स्वरूप में जन्म लेती हैं और नए नामकरण की माँग करती हैं।

   विभिन्न विधाओं की ज़रूरत क्यों पड़ती है? विधाओं के बदलने से सौंदर्याभिव्यक्ति में क्या फ़र्क आता है?

भाषा शिक्षण और भाषायी कौशलों के विकास हेतु साहित्य का उपयोग

साहित्यिक सामग्री भाषा-शिक्षण और भाषायी कौशलों के विकास हेतु सबसे उपयुक्त संदर्भ-सामग्री है। वैसे तो भाषा की हर अभिव्यक्ति भाषा-शिक्षण व भाषायी कौशलों के विकास का उपयोगी साधन है, फिर भी यह स्वीकारना होगा कि 'साहित्य' उनकी तुलना में अधिक कारगर साधन है। कारण यह है कि साहित्य में भाषा अपने सबसे रचनात्मक रूप में आती है। यहाँ आने के बाद, शब्द और अर्थ के बीच रूढ़ (फ़िक्स्ड) संबंध नहीं रहता, बल्कि साहित्य में शब्द बहुअर्थी हो जाता है, जिससे अर्थ की अनेकानेक संभावनाएँ उभरकर आती हैं। कुछ पर्यायवाची-अनेकार्थक शब्दों के खेल से तो बहुत कुछ साहित्य के आस्वादकों या ग्रहीताओं की अपनी-अपनी रुचि/संस्कार, परिस्थिति या मन:स्थिति से कोई साहित्य हर एक के लिए उनके हिसाब से अलग-अलग अर्थ लेकर आता है। ठीक अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' कविता की तरह— वीणा बजती है एक स्वर में, पर राजवर्ग

और प्रजावर्ग के अलग-अलग स्तर के लोग अपने-अपने संस्कारों के तहत उस एक स्वर को अलग-अलग तरह से सुनते, संतुष्टि-लाभ करते और अपनी-अपनी जीवन-स्थितियों के अनुसार गतिशील होते हैं। कहने का अर्थ है कि साहित्य के अनुशीलन से हम भाषा के बहुअर्थी-बहुरूपी कल्पनामूलक प्रयोग की सूझ पाते हैं, उसकी अर्थगत बारीकियों के प्रति सचेत-संवेदित होते हैं। साहित्य के भाषिक कलेवर के किसी हिस्से या प्रसंग-विशेष में आकर शब्द वक्रोक्ति का संस्कार ग्रहण कर लेते हैं, जिसके चलते जैसे ही उनसे मुखातिब होते हैं, हम एक अंतर्यात्रा पर निकल पड़ते हैं या उन्हें लेकर अर्थ के असीम आकाश में कल्पनात्मक उड़ान भरने लगते हैं। हमें ऐसा स्पेस साहित्य की भाषा में ही सुलभ हो सकता है।

भाषा से खेलो, तो भाषा को जानो-पहचानो और उसमें कुछ नया सिरजो

हम भाषा के धरातल पर जितना ही शब्दों से खेलते हैं, हमारी भाषिक क्षमता (व्याकरणिक व अर्थपरक) उतनी ही अधिक जगती और बढ़ती है। वैसे तो कमोबेश वाङ्मय मात्र भाषा का ही खेल है, पर 'साहित्य' हमें भाषा से क्रीड़ा करने का अवसर प्रदान करता है, पर उसमें भी कविता यह अवसर सबसे ज़्यादा देती है। कारण, कविता में दो शब्दों, पदबंधों के बीच अंतराल या गैप सबसे ज़्यादा होता है, जिसमें हम अपनी-अपनी मानसिक संरचना व प्रवृत्तियों के अनुसार स्वयं को बिठा लेते हैं... इसके फलस्वरूप, हम खुद-ब-खुद, मन-ही-मन अपनी सारी इंद्रियों से सक्रिय हो जाते हैं। हम बुद्धि से सोचते-विश्लेषण करते हैं, कल्पना के पंखों पर सवार होकर उड़ते हैं, भावना में बहते हैं, मानचित्र देखते हैं, फिर, मन-ही-मन उन अनुभूतियों की पुन:रचना भी कर रहे होते हैं, जिनसे कविता बनी होती है। यानी, कविता जो स्पेस देती है, उसमें हम अपने को रखकर कविता को अपनी-अपनी तरह और तरीके से समझते और उसे रचते हैं। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक कहने की क्षमता और शब्दों के बीच का अंतराल सबसे गहन होने के कारण, भाषा के साथ खेलना सबसे ज़्यादा कविता में ही संभव है। अपनी संरचना में कविता एक गीली मिट्टी की तरह होती है, जिससे हम मन-माफ़िक न जाने कितनी तरह की अनुभूतियाँ और उनकी पुन:रचना की प्रतिमाएँ गढ़ लेते हैं। कविता में ये खेल तरह-तरह से हो सकते हैं— एक खास पंक्ति को छुपाकर/हटाकर अथवा किसी खास शब्द की जगह कोई पर्यायवाची या अन्यार्थक शब्द रखकर कविता का पाठ बदल सकते हैं और तरह-तरह की शाब्दिक व अर्थ-संबंधी चित्र-विचित्र अनुभूतियों से हम गुज़र सकते हैं। किसी रचना में किसी खास शब्द की जगह कोई खास शब्द रख देने या दो शब्दों की परस्पर अदला-बदली कर देने से उनकी अर्थ-छवियाँ परिवर्तित हो जाती हैं, इससे कभी-कभी पूरी रचना का अर्थांतरण हो जाता है। यह भी एक तरह का भाषिक खेल ही है।

भाषा से खेलने के उदाहरण

गद्य-साहित्य—

'वे मद को मदमत्त बना रहीं थीं, राग को भी रँग रहीं थीं, आनंद को भी आनंदित कर रहीं थीं, नृत्य को भी नचा रहीं थीं और उत्सव को भी उत्सुक कर रहीं थीं।'

—बाणभट्ट की आत्मकथा, सप्तम उच्छ्वास (कान्यकुब्ज के मदनोत्सव का चित्रण)

'आज उदयपुर के चौक के चारों ओर बड़ी चहल-पहल है। नवयुवकों में नवीन उत्साह उमड़ रहा है...। चाँद की चटकीली चाँदनी ने चूड़ावत चकोर का चित्त चंचल कर दिया। चूड़ावत जी चटपट चंद्रभवन की ओर चल पड़े। ... पर जीभ का जकड़ जाना जी को जला रहा था।... हृदय-हारिणी हाड़ारानी हिम्मत की हद करके हलकी आवाज़ में बोली— प्राणनाथ! शूरों को शिथिलता शोभा नहीं देती।...'

—शिवपूजन सहाय, *मुंडमाल कहानी*

काव्य-साहित्य/कविता—

कविता में अलंकार, वक्रोक्ति आदि के विधान शब्द-क्रीड़ा के अवसर लाते हैं। इनके अलावा भी शब्द से खेलने के तमाम अवसर कविता हमें देती है। भाषा से खेलते हुए साहित्य शब्दों का अर्थ भी बदलता है और शब्दों के अंतराल में नया अर्थ भी भर देता है। जैसे— 'समय ने समय दिया, तो हम फिर कभी इस पर बात करेंगे।' (पहले और दूसरे 'समय' का कोशीय अर्थ तो एक है, पर इस के साहित्यिक प्रयोग ने दोनों का तात्पर्य-भेद कर दिया, जिससे पहले का तात्पर्य 'नियति', 'काल-चक्र' या 'व्यस्त जीवन की व्यवस्था' हो गया है, जबकि दूसरा सामान्य अर्थ में है— फुरसत का समय। इसी तरह का प्रयोग है— 'वक़्त ने किया क्या हसीं सितम! तुम रहे न तुम, हम रहे न हम।' इसमें आया वक़्त भी सामान्य अर्थ में न रहा, बल्कि उक्त पहले अर्थ में हो चुका है, फिर इसमें आया 'हसीं' (हसीन) शब्द सामान्यत: सुंदर या रमणीय का वाचक है, पर यहाँ कविता में आकर 'सितम' (अत्याचार) का विशेषण बनकर 'त्रासद' या 'भयंकर' जैसा कोई भाव ध्वनित कर रहा है। हिंदी में 'आह!' दु:ख-संवेदना का व्यंजक शब्द है, पर उसी को साहित्य सुख-संवेदना में रूपायित कर देता है। जैसे—

'आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम-बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि-मंडल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम ॥'

—*कामायनी* का श्रद्धा सर्ग

'आ गए हैं आह! गर्भाधान के पल।' गद्य-माध्यम का साहित्य ही भाषा के संरचनात्मक पक्ष को सिखलाने में अधिक मददगार होता है, क्योंकि भाषा का सहज प्रयुक्त रूप गद्य ही होता है। उसमें व्याकरणिक व्यवस्था अपने संपूर्ण रूप में आती है। कविता में वह कुछ विलुप्त व संक्षिप्त रूप में, शब्द-क्रम के कुछ हेर-फेर के साथ आती है, इसलिए भाषा के संरचनात्मक पक्ष को सिखलाने में कविता उस तरह से मददगार नहीं होती, पर अर्थवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं के बोध और अभ्यास हेतु कविता से बेहतर अन्य साधन नहीं।

—*मेघदूतम्* का रांगेय राघव कृत अनुवाद

साहित्य पढ़ने के मायने

- विषय-वस्तु (भाव-विचार-पक्ष) को संदर्भ में पढ़ना
- भाषा को संदर्भ में पढ़ना
- साहित्य के ज़रिये समाज को पढ़ना-समझना
- समाज में लोकतांत्रिक बदलाव के लिए उन्मुख होना

6.1.3 साहित्य शिक्षण

हर अध्यापक-अध्यापिका मानसिक संघटन और प्रवृत्तियों के हिसाब से एक-दूसरे से अलग होता है। साथ ही, विद्यार्थी व कक्षा के वातावरण भी अलग-अलग तरह के होते हैं। इसी से शिक्षण की किसी खास विधि की बात करना कोई आसान काम नहीं है। अध्यापक-अध्यापिका तो कोई पाठ्य विषय/प्रकरण लेकर कक्षा में स्वतंत्रचेता विचारक की तरह प्रविष्ट हो सकते हैं, परंतु कक्षा-शिक्षण के दौरान उनकी यह स्वायत्त स्थिति रचनात्मक तरीके से अतिक्रमित होती है। शिक्षक-शिक्षिका, कक्षा का वातावरण और उसमें उपस्थित तरह-तरह की सक्रियता से लबालब भरे विद्यार्थी, फिर इन सबके बीच पसरता हुआ पाठ, और पाठ की समग्रता या अंश-दर-अंश से हो रही उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया व अंत:संवाद, इन सबकी सम्मिलित परिणति से हर बार नवीन उद्भावनाओं-अनुभवों व ताज़े विमर्श से परिपूर्ण शिक्षण का प्रारूप उभरकर आता है। इसी से कहा जा सकता है कि शिक्षण के लिए पहले से किसी मॉडल का निर्धारण या निर्माण सहज नहीं है। वहाँ भी 'साहित्य' जैसी चीज़ के शिक्षण के लिए, तो शिक्षण-प्रारूप बनाना और भी कठिन होगा, जो व्यक्ति परिस्थिति आदि के लिहाज़ से हर बार अपना पाठ्य और अर्थगत स्वरूप बदलता रहता है। फिर भी बिना किसी योजना के सीधे कक्षा में घुस के, हवा में तीर चलाने की जगह यदि हम किसी विषय/पाठ के शिक्षण को लेकर कुछ मोटे उद्देश्यों का निर्धारण कर लें और उनके अनुसार कुछ पाठ-विधि या पाठ-योजना तैयार कर लें, तो अध्यापन-कार्य न केवल सुगम हो जाता है, अपितु उसके ज़रिये अध्यापक-अध्यापिका कक्षा के सीमित समय में विद्यार्थियों को अपना सर्वोत्तम और अधिकतम प्रदेय दे सकते हैं। साथ ही, पाठ-विधि या पाठ-योजना के निर्धारण के दौरान शिक्षक-शिक्षिका का पाठ से अंतरंग जुड़ाव भी हो जाता है, जो कक्षा-शिक्षण के दौरान उनकी अध्यापन-रुचि के रूप में आकार लेता है। इसी बात को ध्यान में रखकर साहित्य की किसी विधा की शिक्षण-विधि पर बात की जा सकती है।

साहित्य-शिक्षण के उद्देश्य

- साहित्य में चित्रित मानव-जीवन, भाव, विचार आदि का दर्शन, ज्ञान और बोध कराना
- साहित्य-कला द्वारा उनमें कलात्मक संवेदना जगाकर, उनकी रुचियों का परिष्कार करना
- उनमें कल्पनाशीलता और विचार-शक्ति का विकास करना
- उनमें मानवीय संवेदना का विकास तथा उनकी सहजात प्रवृत्तियों का उन्नयन करना, ताकि वे अपने आस-पास के समाज और दुनिया को स्वस्थ, पूर्वाग्रह-मुक्त, आशावादी व रचनात्मक मानवीय दृष्टि से देखने की आदत डालें— उनमें पूरे समाज से जुड़ने और किसी रचना में निहित प्रकट या प्रच्छन्न सामाजिक आशयों को पढ़ने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो— जिससे सब मिलाकर वे पहले से बेहतर इंसान बन सकें।
- साहित्य में आए भाषा के खास-खास प्रयोगों की तरफ़ आकृष्ट करते हुए, उनमें भाषायी संवेदना जगाते हुए उनकी सामर्थ्य को बढ़ाना।

सार-रूप में, 'हिंदी-साहित्य' के शिक्षण का अर्थ उसकी विविध विधाओं तथा हिंदी भाषा की (विधा और वक्ता/रचनाकार के सापेक्ष) विविध शैलियों का शिक्षण है, जिसके अंतर्गत, हिंदी भाषा में व्यक्त हो रही चेतना/संस्कृति/स्थितियों के अनेकानेक पक्ष और दमित/शोषित के जीवन व उनकी अभिव्यक्ति के रंग-ढंग-रुख आदि का ज्ञान व बोध भी लक्ष्यीभूत हैं। विद्यार्थियों को साहित्य में आई भाषायी बारीकियों के प्रति संवेदित करना, ताकि उन्हें नित नए-नए शब्द गढ़ने और प्रयोग करने को प्रेरित किया जाए, साथ ही शब्द में निहित अन्यान्य आशयों (जैसे— सामाजिक अंतर्विरोध) को पकड़कर उस दिशा में सोचने और नया खोजने-रचने को उत्सुक करना भी साहित्य-शिक्षण का ही निहितार्थ है।

स्कूली पाठ्यक्रम में साहित्य, मीडिया या अनुवाद, भाषा के शैक्षिक उद्देश्यों तक पहुँचने का ज़रिया होता है। दरअसल भाषा के विविध रूपों को समझने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा की समझ बनानी होगी। इसके माध्यम से भाषा-व्यवहार के साथ-साथ भाषा प्रयोक्ता वर्ग के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करना भी उद्देश्य है।

6.1.4 स्कूली पाठ्यक्रम में मीडिया की भूमिका

अपने आस-पास की चीज़ों, घटनाओं और लोगों के बारे में ताज़ा जानकारी रखना मनुष्य का सहज स्वभाव है। जिज्ञासा का भाव उसमें प्रबल होता है। यही जिज्ञासा समाचार और व्यापक अर्थों में मीडिया का मूल तत्त्व है। मीडिया लेखन का विकास भी मनुष्य की सहज जिज्ञासा को शांत करने के प्रयास के रूप में ही हुआ। वह आज भी इसी मूल सिद्धांत को

भारतेंदु हरिश्चंद्र

ध्यान में रखते हुए काम करता है। समाचारों का दायरा जनरुचि और जनहित के आधार पर बदलता रहता है। मीडिया का बुनियादी तत्त्व है— नयापन। समाचार अगले दिन मुरझा जाने वाले फूल की तरह होता है। पुराना अखबार कोई नहीं पढ़ना चाहता। मीडिया के क्षेत्र में जोसेफ़ पुलित्जर का नाम प्रसिद्ध है, उनका कहना है, "समाचार वह है जो मौलिक, सबसे अलग, नाटकीय, रोचक, विचित्र, भावनात्मक और किसी हद तक रोमांचकारी हो, जिस पर लोग चर्चा करें।"

हिंदी भाषा के विकास में शुरुआती अखबारों और पत्रिकाओं ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस लिहाज़ से भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम हमेशा सम्मान के साथ लिया जाएगा, जिन्होंने कई पत्रिकाएँ निकालीं। आज़ादी के आंदोलन में भारतीय पत्रों ने अहम भूमिका निभाई। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक और मदनमोहन मालवीय जैसे नेताओं ने लोगों को जागरूक बनाने के लिए पत्रकार की भी भूमिका निभाई। गांधी जी को हम समकालीन भारत का सबसे बड़ा पत्रकार कह सकते हैं, क्योंकि आज़ादी दिलाने में उनके पत्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज़ादी के पहले के प्रमुख पत्रकारों में गणेश शंकर विद्यार्थी, बी. आर. अंबेडकर (मूक नायक, बहिष्कृत भारत) राजाराममोहन राय, माखनलाल चतुर्वेदी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबूराव विष्णुराव पराड़कर, प्रताप नारायण मिश्र, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी और बालमुकुंद गुप्त हैं। उस समय के महत्वपूर्ण अखबारों और पत्रिकाओं में *केसरी, हिन्दुस्तान, सरस्वती, हंस, कर्मवीर, आज, प्रताप, प्रदीप, विशाल भारत* आदि प्रमुख हैं।

मीडिया लेखन आपको न केवल पूरी दुनिया से जोड़ता है, बल्कि दुनिया को रचने में मीडिया की भूमिका सबसे बड़ी होती है। तुरंत प्रभाव वाले आपके हर शब्द समाज की दिशा तय कर सकते हैं, लेकिन जनसंचार माध्यमों का लोगों पर सकारात्मक के साथ-साथ नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। इन नकारात्मक प्रभावों के प्रति लोगों का सचेत होना बहुत ज़रूरी है। इसीलिए मीडिया लेखन को पढ़ना-पढ़ाना, विद्यार्थियों को ऐसा भाषिक तेवर देने में समर्थ हो सकता है, जो बेहतर और जागरूक व्यक्ति के लिए ज़रूरी होगा। साहित्य के ज़रिये जहाँ पाठ की अनेक अर्थ संभावनाएँ खुल जाती हैं, वहीं मीडिया अनेक तथ्यों के मेल से एक सच को जानने की दिशा देता है। यह दुनिया को नए ढंग से रचने की

भाषा देता है। यहाँ तथ्यों को सीधे-सीधे बिना किसी घुमाव के प्रस्तुत करना ही सृजनात्मकता है। उदाहरण के लिए—

स्त्री शक्ति के कवच में पेश हुआ आरक्षण बिल

महिला आरक्षण बिल पर बीस निकला यू.पी.ए.

महिला आरक्षण बिल हंगामे में पेश

राज्य सभा में पेश हुआ महिला आरक्षण बिल

महिलाओं के आरक्षण का एक चरण पूरा।

इन पाँचों समाचार शीर्षकों में तथ्य की स्पष्टता तीसरे वाले शीर्षक में अधिक ठीक से हो पाई है। यद्यपि काफ़ी हद तक सभी सीधे-सीधे समाचार ही लिखे गए हैं।

मीडिया के कई रूप हैं। मुख्य रूप से प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक के कई रूप इन माध्यमों के ज़रिये हमारे आस-पास होते हैं।

6.1.5 अनुवाद और साहित्यिक लेखन

एक अनूदित रचना के ज़रिये पाठक रचनाकार— अनुवादक दोनों के समाज, संस्कृति, भाषा संसार और विचार से जुड़ता चला जाता है। इस तरह पाठक के 'मैं' में कई अनुभूतियों का समावेश होता है, जो 'मैं' का विस्तार भी होता है। इसलिए अनूदित रचनाओं को पढ़ने-पढ़ाने से एक अधिक सहिष्णु मनुष्य का निर्माण हो सकता है। अनुवाद के ज़रिये हिंदी में कई भाषाओं की अनुभूति सुनने को मिलती है। कई भाषाओं की विशेषताओं से हिंदी भी समृद्ध होती है। हिंदी के इस विविधभाषी बहुलतावादी स्वरूप से रू-ब-रू होने के लिए अनुवाद की हिंदी जानना ज़रूरी है। एक तरफ़ अनुवाद सभी समाज की आहटों को जानने में मदद करता है, तो दूसरी तरफ़ वह कई भाषाओं की सोच, विचार, संस्कृति, दुख-सुख को हमारी भाषा में लाकर हमें उनसे जोड़ता है।

शाश्वत उत्सुकता, जिज्ञासा मानवता की सबसे बड़ी विशेषता है। दूसरों के बारे में जानना, उन्हें समझना और इस तरह दूसरों के 'दूसरेपन' को दूर कर देना। मानव इतिहास. लोगों द्वारा भौगोलिक, सांस्कृतिक सीमाओं को लाँघने की कहानियों से भरा है। व्यापारी, यात्री, तीर्थयात्री, मिशनरी, सैलानी हमेशा एक जगह से दूसरी जगह जाते रहे और लोगों से संपर्क, संवाद करते रहे। औरों को जानने और संवाद करने का अर्थ है— उनकी भाषा को जानना, उस माध्यम को जानना, जिसमें वे बोलते, लिखते और अपनी दुनिया की व्याख्या करते हैं और यहीं अनुवाद के सौंदर्य और हमारे जीवन में उसके महत्व का अंदाज़ा लग जाता है। जैसे ही हम दूसरी भाषा सीखते हैं, दूसरों के साथ विचारों-भावनाओं का आदान-प्रदान करते हैं और इन सारे अनुभवों को अपनी भाषा में लिखते हैं, व्यक्त

करते हैं तभी एक सृजनशील/सकारात्मक प्रक्रिया की शुरुआत हो जाती है। एक तरफ़ हमारी दूरियाँ कम होने लगती हैं, दूसरी तरफ़ हमारा दायरा विस्तृत होने लगता है। अनुवाद की प्रक्रिया वास्तव में हमारे दायरे को बढ़ाती है, मानवता को संपन्न करती है और विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद कायम करती है। अनुवाद को ही इस बात का श्रेय जाता है कि आज राजस्थान में बैठा व्यक्ति सुब्रह्मण्यम भारती को राजस्थानी में, बिहार के एक गाँव का विद्यार्थी शेक्सपियर को हिंदी में पढ़ता है, एक फ्रांसीसी या जर्मन धर्मशास्त्र का विद्वान/दार्शनिक भारतीय धर्म ग्रंथों का अध्ययन करता है या दोस्तोव्स्की, फ्रांज काफ़्का, कार्ल मार्क्स हमारी घरेलू ज़िंदगी का हिस्सा बन जाते हैं।

हर भाषा में रचना होती है और उसका तरीका लगभग एक जैसा ही होता है। ज़रूरी है उस भाषा से प्रेम, लगाव, गहरी पहचान और दोस्ती। रवींद्रनाथ टैगोर ने बांग्ला भाषा में रचनाएँ कीं। देखिए उनके एक प्रसिद्ध गीत का यह अंश—

यदि तोर डाक शुने केऊ न आशे, तबे एकला चलो रे।

एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे।

(बांग्ला)

तेरी आवाज़ पे कोई ना आए, तो फिर चल अकेला रे।

चल अकेला, चल अकेला, चल अकेला रे।

(हिंदी)

यहाँ कवि ने अपनी बात सीधे-सीधे रख दी है। जैसी हम बोलते हैं वैसी ही। सरल वाक्य में, जिसका गहरा प्रभाव हमारे हृदय पर पड़ता है। फिर एकला चलो को तीन बार लिखकर कवि ने जो संगीत रचा, वह समवेत स्वर जैसा प्रभाव उत्पन्न करता है। यही सृजनात्मकता है। भाषा का ऐसा व्यवहार जो अधिक से अधिक लोगों को अधिक समय तक प्रभावित करता रहता है। हिंदी अनुवाद करते हुए अनुवादक कविता के इस मूलभूत प्रभाव को पकड़ने की कोशिश करता है, जैसे— हिंदी में भी चल अकेला के माध्यम से समवेत ध्वनि को बरकरार रखने और साथ ही बांग्ला भाषा के बांग्लापन को बनाए रखने की कोशिश हुई है। साहित्यिक लेखन और अनुवाद एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। एक के बिना दूसरे का काम नहीं चलता, खासकर भारत जैसे बहुभाषिक देश में। बचपन से हम विभिन्न भाषाओं के परिवेश में विकसित होते हैं और अनुवाद से समझ बनाते हैं। हर कोई अनुवादक है, क्योंकि वह एक साथ कम-से-कम दो भाषाओं का व्यवहार करता है। इस भाषा से उस भाषा में बात को ले जाता है। हो सकता है आप चाची से जो भाषा बोलते हों, मौसी से नहीं; नानी से जो भाषा बोलते हों, दादी से नहीं; दोस्तों से जो भाषा बोलते हों, शिक्षक से नहीं... इस क्रम में एक कामचलाऊ अनुवाद तो लगातार करना

पड़ता है। 'रामायण' और 'महाभारत' के ही जितने संस्करण हर भाषा में उपलब्ध हैं, अनुवाद के ही रूप माने जाएँगे।

आज की दुनिया में अनुवाद की माँग और ज़रूरत दोनों बढ़ गई हैं। यह माँग बढ़ी है, तो इसीलिए कि दुनिया के विभिन्न देश-प्रदेश उद्योग-व्यापार और पर्यटन के मामले में बहुत करीब आ गए हैं और एक भाषा से दूसरी भाषा में अपनी बात पहुँचाने का ज़रिया 'अनुवाद कार्य' का ही तो है। एक और उदाहरण लें, जब कोई बड़ी कंपनी आज अपने ब्रांड का विज्ञापन करती है, तो वह विज्ञापन भी पहले तो एक ही भाषा में तैयार किया जाता है, फिर दूसरी भाषाओं में उसी के आधार पर विज्ञापन तैयार किया जाता है, यह भी एक प्रकार का अनुवाद ही है। टी.वी. के परदे पर या अखबार के पन्नों पर हम एक ही विज्ञापन को हिंदी से बांग्ला या हिंदी से तमिल में अनुवाद किया हुआ पाते हैं और यह तो आपको पता ही है कि कोई विशिष्ट लेखक या पत्रकार आज अपना कॉलम (स्तंभ) किसी एक भाषा में लिखता है, मान लीजिए अंग्रेज़ी में ही, तो वही कॉलम भारत की कई भाषाओं में अनुवाद के ज़रिये छपता है। अनुवाद के ज़रिये भाषा के विस्तृत संसार से विद्यार्थियों को रू-ब-रू कराना, उन्हें एक भाषा के ज़रिये दुनिया की कई भाषाओं के रंग, संस्कार से परिचित कराना है। एक उदाहरण देखें—

Once more she found herself in a long hall, and close to the little glass table. "Now I'll manage better this time," she said to herself, and began by taking the little golden key, and unlocking the door that led into the garden. Then she set to work nibbling at the mushroom (she had kept a piece of it in her pocket) till she was about a foot high: then she walked down the little passage— then she found herself at last in a beautiful garden, among the bright flower-beds and the cool fountains.

एक बार फिर उसने अपने आपको एक लंबे-से हॉल में शीशे की एक छोटी-सी मेज़ के पास खड़े पाया। "अबकी बार मैं कोई गलती नहीं करूँगी," उसने अपने आप से कहा। उसने सोने की चाबी उठाकर वह दरवाज़ा खोल दिया, जिसमें से गुज़रकर बाग तक पहुँचा जा सकता था। तब उसने कुकुरमुत्ते को कुतरना शुरू कर दिया (उसने एक टुकड़ा अपनी जेब में बचा रखा था) और जब उसका कद एक फुट हो गया तो वह उस छोटे-से रास्ते पर चलती हुई उस सुंदर बाग में पहुँच गई— रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियों और ठंडे फव्वारों वाले बाग में।

—*एलिस अजूबों की दुनिया में*, अनुवादक— कृष्ण बलदेव वैद

द गेम ऑफ़ एलिस इन वंडरलैंड. शेल्को एंड राइटर, 1882.

वहाँ उसने अपने आपको उसी हॉल के अंदर पाया जहाँ शीशे वाली मेज़ थी। वह उसने फ़ौरन पहचान ली। वह छोटा-सा दरवाज़ा भी उसने देखा, जिसके पार वही लुभावना बाग था, जिसको देखने के लिए एलिस इतनी लालायित थी। इसके लिए कद को छोटा करना सबसे पहली ज़रूरत थी। जेब से कुकुरमुत्ते के टुकड़े उसने निकाले, उन्हें खाकर वह फिर नन्ही-मुन्ही-सी हो गई।

अब वह बाग में थी। वहाँ उसने देखा, तरह-तरह के फूल खिले हुए हैं, रंगों की जैसे नुमाइश हो और उनके बीच में वह फ़व्वारा! एलिस मारे खुशी के नाच उठी।

—*आश्चर्य लोक में एलिस,* अनुवादक— शमशेर बहादुर सिंह

भाषा से संवाद

प्रशिक्षण के दौरान

नवीन पाठ्यचर्या की समीक्षा और प्रस्तुतीकरण (समूह कार्य)

1. नवीन पाठ्यचर्या में भाषा शिक्षण से संबंधित अध्याय पर चर्चा करें।
2. नवीन पाठ्यचर्या में भाषा शिक्षण से संबंधित अध्याय का विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण करें।
3. 'बच्चे की भाषा' या ऐसे अन्य किसी विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित करें।

कक्षा शिक्षण के दौरान

1. विभिन्न राज्यों के, हिंदी के पाठ्यक्रम का विश्लेषण कर कक्षा में प्रस्तुत करें।
2. अपनी मनपसंद कहानियों का संकलन तथा उनसे संबंधित लेख पढ़ें।
3. किन्हीं दो राज्यों द्वारा विकसित, किसी भी एक (6–12) कक्षा की हिंदी की पाठ्यक्रम का तुलनात्मक अध्ययन करें।

कालिदास कृत *कुमार संभवम्* का पाँचवाँ सर्ग

मूलरूप उपलब्ध — पुस्तकालय, कैंब्रिज विश्वविद्यालय

विषय — संस्कृत; काव्य,मूल पाण्डुलिपि

उद्‌भव/रचना स्थान — पूर्व भारत

रचना काल — 12 वीं से 13 वीं शताब्दी/ईसा

भाषा— संस्कृत

उपलब्धता — बेण्डाल और सेसिल से प्राप्त

फ़ोलियो की उँचाई 3.8 सेमी. चौड़ी और 29.5 सेमी. लंबी

प्रकार — फ़ोलियो ताड़पत्र

वस्तुस्थिति — अपूर्ण, दाहिने निचले किनारे पर फट जाने से लिखित सामग्री अपठनीय है और ऊपरी किनारे कटे हुए हैं।

लिपि — प्रारंभिक बांग्ला (काली स्याही में) प्रत्येक पृष्ठ पर छः पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में लगभग 60 अक्षर लिखे हुए हैं।

इकाई

7

भाषा-साहित्य और सौंदर्य—2

7.1 साहित्यिक अभिव्यक्ति के विविध रूपों को पढ़ना-पढ़ाना 224

7.1.1 कविता को पढ़ना-पढ़ाना 224

7.1.2 गद्य की विविध विधाओं को पढ़ना-पढ़ाना 235

7.1.3 कहानी को पढ़ना 239

7.1.4 निबंध को पढ़ते हुए 251

7.1.5 रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी और निबंध को पढ़ना-पढ़ाना 256

7.1.6 नाटक को पढ़ना-पढ़ाना 264

7.1.7 समकालीन साहित्य की पढ़ाई—कुछ संदर्भ 266

7.1 साहित्यिक अभिव्यक्ति के विविध रूपों को पढ़ना-पढ़ाना

शिक्षण को मोटे तौर पर परिभाषित करते हुए कह सकते हैं कि यह किसी अनुभव से जुड़ने की प्रक्रिया है। स्पष्ट है कि हमारे प्रत्यक्ष अनुभव हमारी इंद्रियों से प्राप्त ज्ञान होते हैं, आँख, कान, त्वचा आदि हमारे अनुभव के स्रोत होते हैं, परंतु इनकी सीमा यह है कि ये सीमित परिवेश में ही कारगर होते हैं। किसी दूसरे स्थान के लोगों के अनुभव को या किसी और काल में जीवन गुज़ार चुके व्यक्ति के अनुभव को जानने और उसे सुरक्षित रखने के लिए हमें अन्य माध्यमों की ज़रूरत पड़ती है। इस कार्य को पूरा करने का सबसे बेहतर माध्यम भाषा है। जब आज की तरह तकनीक और संचार के साधन नहीं थे और लिपि, कागज़, मुद्रण यंत्र आदि का आविष्कार नहीं हुआ था, तब ध्वनि संकेतों और उनके एक खास क्रम के माध्यम से मानव समुदाय जीवन-जगत के विभिन्न अनुभवों को सुरक्षित रखते थे। यह प्रक्रिया थोड़े-बहुत बदले रूप में आज भी जारी है, इसीलिए किसी भी शिक्षण के लिए माध्यम के रूप में भाषा अनिवार्य होती है और खासतौर से आरंभिक शिक्षण मूलत: भाषा शिक्षण ही होता है। यह सर्वविदित है कि सभी विषयों-शास्त्रों के लिए भाषा की ज़रूरत होती है, परंतु उनमें भाषा की भूमिका माध्यम के रूप में ज़्यादा होती है। अन्य विषयों की तुलना में साहित्य में भाषा माध्यम ही नहीं लक्ष्य के रूप में भी रहती है और साहित्य में भी सबसे ज़्यादा कविता में रहती है, इसलिए कविता को समझना और कविता का शिक्षण भाषा की बेहतर समझ में सबसे बड़ी भूमिका निभाता है।

7.1.1 कविता को पढ़ना-पढ़ाना

कविता को 'आदिम' विधा कहा जाता है। आधुनिक काल से पहले एक हद तक 'काव्य' का अर्थ साहित्य हुआ करता था। काव्यशास्त्र के अंतर्गत साहित्य की सभी विधाओं और उनकी आलोचना का अध्ययन किया जाता था। आज हम काव्य या कविता को पद्य के अर्थ में लेते हैं। आमतौर पर यह धारणा बनाई जाती है कि कवि अकसर खयाली दुनिया में विचरण करते रहते हैं। सवाल यह उठता है कि क्या यथार्थवादी समय में कविता जीवन-यथार्थ से जुड़ी है? भाषा शिक्षण के लिए वह क्यों ज़रूरी है? इन बातों पर विचार करने से पहले आइए खुद से कुछ सवाल करते हैं।

कविता-कहानी आदि के लिए हमारे मन-मस्तिष्क में विषय कहाँ से आते हैं? और विषयों की प्रस्तुति कैसे होती है? हमारे सोचने का माध्यम क्या होता है?

पहले सवाल पर आते हैं— जवाब होगा कि हमारे सोचने की सामग्री का एक बड़ा हिस्सा अतीत यानी अनुभव से जुड़ा होता है, परंतु बात इतने से नहीं बनती, हमारा मस्तिष्क चित्रों और संकेतों के माध्यम से काम करता है। ढेर सारे संकेत मिलकर शब्द एवं भाषा का निर्माण करते हैं। फिर विभिन्न शब्दों का संयोजन अनंत अर्थ-छवियों का निर्माण करता है। कुछ शब्दों के आपसी संयोजन से अनेकानेक अर्थछवियों के निर्माण की जो शक्ति मनुष्य को मिली हुई है, उससे ही विचार का जन्म होता है। यह कहना गलत न होगा कि यह 'विचार शक्ति' ही मनुष्य को अन्य जीवों से अलग कर देती है। संक्षेप में इन बातों का समाहार करें तो हमें तीन चीज़ें प्राप्त होती हैं— मस्तिष्क, स्मृति और भाषा। स्मृति मनुष्य की विशिष्टता है। यह कहना गलत न होगा कि बिना स्मृति के न भाषा होगी, न समय का बोध होगा और न ही तुलना और विचार करने वाला दिमाग। स्मृति पर यहाँ इतना बल देने का कारण यह है कि इसी स्मृति से हमारा जीवन-जगत से परिचय होता है। इसी के बल पर हम अपने दिक्‌काल (टाइम एंड स्पेस) को और खुद को जान और पहचान पाते हैं। इसी शक्ति से विविध संदर्भों में खुद को रखकर अपना मूल्यांकन कर पाते हैं या नये संदर्भों का निर्माण कर पाते हैं। यह कहना गलत न होगा कि शिक्षा का उद्देश्य भी अपने परिवेश (जीवन-जगत), उसके मूल्यों और संदर्भों की बेहतर पहचान करना है।

सामान्यत: ऐसा समझा जाता है कि जब भाव पक्ष ज़्यादा प्रबल होता है तो अभिव्यक्ति पद्य में आती है और जब विचार पक्ष प्रबल होता है तो गद्य के रूप में। यह भी कहा जा सकता है कि कथ्य या विषय स्वयं अपनी अभिव्यक्ति का रूप या विधा ढूँढ लेते हैं। जब लेखक या हमारे मन में विचार आते हैं तो विचार या भाव खुद यह तय करते चलते हैं कि उनकी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम कहानी, कविता, लोकोक्ति या निबंध आदि क्या होगा?

स्मृति और विचार शक्ति को सुरक्षित करने का कार्य प्राचीन काल में भाषा और कविता करती थीं, आज भी करती हैं। यह अनायास नहीं है कि पाश्चात्य चिंतक इमर्सन ने भाषा को 'जीवाश्म कविता' कहा था। जब लिखित इतिहास नहीं था, तब भी इतिहास बोध था और उस बोध के निर्माण और संरक्षण में कविता का बहुत बड़ा हाथ था। जब लिपि नहीं थी, संग्रह के साधन नहीं थे तब हमारी कविता जीवन की संग्रहणीय बातों को स्मृति में पिरोकर सुरक्षित रखती थी। इस प्रकार कविता को जानने का एक सूत्र हमें प्राप्त होता है और वह है स्मृति। यानी कविता में स्मृति रहती है या स्मृति से कविता बनती है, दूसरे शब्दों में कविता को पढ़ने और समझने का एक मतलब उन स्मृतियों को खोलना या व्याख्यायित करना होता है, जिन्हें कवि ने रचा होता है।

रचनाकार/कवि चाहे किसी भाषा या क्षेत्र के कवि हों वे वाल्मीकि, कबीर या तुलसीदास हों या हाल के निराला और मुक्तिबोध, इन सबने स्मृतियों का उपयोग कर उनकी पुनर्रचना की है। कहा जा सकता है कि कविता में स्मृति न केवल बची रहती है, बल्कि विविध तरीकों से कविता स्मृति को स्मरणीय बना देती है। यहाँ 'विविध तरीकों' पद विचारणीय है। ऐसा क्या करती है कविता जिसके कारण यह दुनिया की सभी सभ्यताओं में आदि विधा बन जाती है। विस्तार में न जाते हुए कुछ बिंदुओं को मोटे ढंग से गिनाएँ तो कविता की उस विशेषता को हम ध्वनि तत्व, बहुअर्थी संभावना, संक्षिप्तता, लयात्मकता, संरचनात्मक विशिष्टता, बिंबात्मकता, छंदात्मकता, मिथक से संबंध और उसके निर्माण आदि से जोड़ सकते हैं और इस सूची में रस, मनोहर उपदेश और रंजन या आह्लाद प्रदायिनी शक्ति को भी रख सकते हैं।

कविता पढ़ते हुए— क्षणिक रचनात्मक कौंध ही कविता नहीं है। वह अनुभव और अभिव्यक्ति क्षण में आ सकती है, परंतु उसे बनाने में वर्षों लग सकते हैं। इस प्रक्रिया में कविता एक तरह के स्पेस या खास तरह की रिक्तता का निर्माण करती है। उसमें सायास एक अस्पष्टता का, थोड़ी उलझन का भाव हो सकता है। इस प्रकार कविता एक खास तरह से खाली स्थान रचती है, वह पाठक को आमंत्रित करती है कि वे अपने मन की बातों को कविता के खाली स्थानों में पिरोकर अर्थ का निर्माण करें। चूँकि हर व्यक्ति के लिए समाज और दुनिया के मायने अलग-अलग होते हैं, इसलिए वह खाली स्थान को अपने ढंग से भरता है और अपना खास अर्थ प्राप्त करता है। इसीलिए किसी कविता को पढ़ाते या पढ़ते समय शब्दों को पढ़ने से ज़्यादा महत्वपूर्ण उस खाली जगह को पढ़ना होता है, जिसे आम बोलचाल में हम केवल अभिधा ही नहीं, लक्षणा या व्यंजना आदि के रूप में व्यक्त करते हैं, इसीलिए कविता को अकसर खोलना पड़ता है, उसके विभिन्न आयामों को एवं संभावनाओं को समझना पड़ता है, उसके अन्वय की ज़रूरत पड़ती है। कविता केवल अभिव्यक्ति नहीं, निर्मिति भी होती है, इसीलिए कविता के रूप और उसकी संरचना में कुछ ऐसा होता है जिससे उसमें कुछ छूट जाता है और कुछ छुप जाता है, कई बार सायास और कई बार अनायास। हम कह सकते हैं कि कविता केवल भाव या विचार की अभिव्यक्ति नहीं है, वह एक बहुआयामी और बहुअर्थी भाषायी जगह या *लिंग्विस्टिक स्पेस* की रचना या उस रचना की तलाश बन जाती है। कवितापन का होना कई बातों को छुपा देने या उसे लुप्त कर देने में निहित होता है, इसी कारण उसमें संक्षिप्तता और घनत्व आता है और वह वैयक्तिक ज़्यादा होती है। इसे एक उदाहरण के माध्यम से देखें—

हाय! मैंने क्यों तोड़े
और क्यों नहीं तोड़े,
वे नीले रंग के फूल

कल्पना करें कि एक बच्ची है जो बगीचे में एक फूल की सुंदरता को देखकर आह्लादित हो रही है और उसे देखते हुए एक द्वंद्व से गुज़र रही है। एक ओर तो वह सौंदर्य को अधिकाधिक मात्रा में अपने पास रखना चाहती है, उस सुंदरता को अपनी थाती बना लेना चाहती है। 'क्यों नहीं तोड़े' में इसी बात की कसक है कि इतने सुंदर फूल को तोड़कर मुझे अपनी संपत्ति बना लेना चाहिए था, लेकिन दूसरे ही पल उस फूल के वजूद को लेकर, फूल के अपने जीवन को लेकर भी उसके मन में एक स्वाभाविक चिंता है कि मेरे तोड़ने से फूल का जीवन नष्ट हो जाएगा। साथ ही वह यह भी सोच रही है कि जिस सौंदर्य अनुभव से मैं गुज़री हूँ, इसे तोड़ लेने से तमाम लोग उस सौंदर्य से वंचित रह जाएँगे। 'मैंने क्यों तोड़े' में इस भाव से उत्पन्न एक तरह का अपराधबोध दिख रहा है। साथ ही इसका अत्यंत महत्वपूर्ण अंश एक छोटा-सा शब्द 'हाय' है। यह एक साथ आश्चर्य, प्रसन्नता, दुख, विस्मय आदि कई भावों को समेट रहा है और पूरी कविता को एक नयी आभा से भरे दे रहा है। असल में यह कविता जापानी *हाइकू* है। ये तीन पंक्तियाँ एक बहुत बड़े भाव बोध को अत्यंत संक्षेप में हमारे सामने ला रही हैं, जो इस कविता की संक्षिप्तता और इसके भीतर निहित द्वंद्व से पैदा हो रहा है। कविता अपने द्वंद्व से एक ऐसा विक्षोभ पैदा कर रही है जिससे उत्पन्न वैचारिक लहरें दूर-दूर की यात्रा करती चली जाती हैं। कहा जा सकता है कि कविता ऐसे ही विक्षोभ पैदा करने का कार्य करती है, अपने घनत्व के कारण अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में ज़्यादा करती है। इन तीन पंक्तियों में संक्षिप्तता, बहुअर्थीपन, बिंबात्मकता, लयात्मकता आदि उल्लिखित विशेषताओं को रेखांकित किया जा सकता है।

आइए एक-दूसरे मिज़ाज और संरचना की कविता लेते हैं, राजेश जोशी की कविता *बच्चे काम पर जा रहे हैं*—

कोहरे से ढँकी सड़क पर बच्चे काम पर जा रहे हैं,
सुबह-सुबह, बच्चे काम पर जा रहे हैं।
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह,
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना,
लिखा जाना चाहिए, इसे सवाल की तरह।

यह कविता एक चित्र या बिंब निर्मित कर रही है। उस सड़क पर जो आपाधापी और वाहनों की गति के लिए जाना जाता है और जहाँ बच्चे बड़े ही एहतियात से ले जाए जाते हैं, वहाँ बच्चे खुद ही काम पर जा रहे हैं। वह सड़क ऐसी है जो कोहरे से ढँकी हुई है, यानी वह समय जब बच्चों को गर्म रजाई में रहना चाहिए या फिर अपने अभिभावकों के साथ स्कूल जाने की तैयारी में व्यस्त होना चाहिए, उस समय वे काम पर जा रहे हैं। ये दो पंक्तियाँ बिना कहे कविता के बहुत सारे कामों को दर्शा रही हैं। हमारे सामने पहला दृश्य—

नन्हे बच्चों के काम पर जाने का है, दूसरा दृश्य— सड़क की आपाधापी का, तीसरा दृश्य— कोहरे से ढँकी ठंडी सड़क का, जिसमें पास की भी चीज़ें नज़र नहीं आ रही हैं, लोग खुद को टकराने से बचा रहे हैं और इन सबके बीच बच्चे काम पर जा रहे हैं। रचना में इतनी महत्वपूर्ण बात को सामान्य विवरण की तरह लिखे जाने को भयानक बताया गया है।

यह कैसा समय और समाज है, जिसमें यह भयानक बात अपनी पूरी भयावहता को छोड़कर एक सामान्य विवरण की तरह सामने आ रही है। एक बड़े सवाल, एक बड़े मुद्दे का सामान्य-सी घटना बन जाना इस कविता की मूल संवेदना है। इस कविता में एक टेक की तरह 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' पंक्ति का इस्तेमाल किया गया है और चंद पंक्तियों में समाज की उन त्रासद स्थितियों का वर्णन कर दिया गया है, जिसमें बच्चे खेलने और पढ़ने की बजाय काम पर जा रहे होते हैं। इस प्रक्रिया में कवि, बच्चे की नज़र से गेंद, किताब, बगीचे आदि को देखता है और फिर एक कवि के रूप में उस यथास्थितिवाद पर टिप्पणी करते हुए उसे सबसे भयानक बताता है, जिसमें हम हर चीज़ के आदती होते जा रहे हैं, विसंगतियों में भी हमें कुछ असामान्य नहीं लगता।

कविता में बच्चों की उस वेदना से पाठक को जोड़ा गया है जिसे संभव है बहुत सारे बच्चे भी महसूस न कर पाते हों। कविता के माध्यम से रचनाकार उस वेदना को संवेदना के धरातल पर पहुँचाता है। यह एक व्यक्ति या बच्चे की वेदना हो सकती है कि जिसे खेलने की बजाय काम करने को कहा जाए, परंतु कवि ने इसे दुनियाभर के बच्चों से जोड़कर इसे सारे मैदानों, बगीचों और आँगनों के संदर्भ से भरकर इस वैयक्तिक भाव को सामाजिक बना दिया। एक तरफ़ खेलने के इतने सारे साधनों का होना और दूसरी ओर इन्हें छोड़ बच्चे का काम पर जाना, यह अंतर्विरोध कविता को विशेष बना देता है। इसका एक संकेत यह भी है कि इतने सारे बच्चों का बचपन छीनकर हम भविष्य की संभावनाओं को निर्ममतापूर्वक नष्ट कर रहे हैं। कविता एक बहुत बड़े प्रश्न को उठाती है, जिसके बारे में 'शिक्षा का अधिकार' के तहत हम अकसर बात करते रहते हैं। निश्चित रूप से यह संवेदना केवल कविता की चीज़ नहीं है और न ही केवल साहित्य तक सीमित है, बल्कि शिक्षा का मूल लक्ष्य 'जानना' यानी 'विद्' इस वेदना के मूल में है। कविता बस इतना करती है कि अनूठे शब्द-संयोजन द्वारा इसकी मार्मिकता एवं भाव-प्रबलन को बढ़ा देती है।

कविता में विषय के साथ-साथ उसकी प्रस्तुति और संरचना विशेष महत्वपूर्ण होती हैं। एक ही विषय पर ढेर सारी कविताएँ लिखी जा सकती हैं और अपनी संरचना के कारण वे सब विशिष्ट हो जाती हैं। कवि अपने समय और परिवेश से जुड़ा होता है जिसकी अभिव्यक्ति कविता में नज़र आती है, उदाहरण के लिए हम दो भिन्न समय की कविता लें। भक्तिकाल के कवि 'कबीर' ने ज्ञान से उपजी पीड़ा को इन शब्दों में व्यक्त किया—

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।।

'जागना' एक क्रिया है, परंतु कविता में यह कई अर्थों से जुड़ जाती है। इससे हमारे मन में कई बिंबों की उत्पत्ति होती है। जागने में नींद से जागना, अचानक किसी बोध का आ जाना, अज्ञान का पर्दा हट जाना, भटकते हुए को सही राह का मिल जाना आदि शामिल हो सकते हैं।

1825 का यह चित्र बुनकर कबीर के जीवन पर आधारित है।
स्रोत इंटरनेट: http://oldsite.library.upenn.edu/etext/sasia/aiis/mini-paint/company/004.html
उपलब्धता — केंद्रीय संग्रहालय,जयपुर

एक अच्छी रचना अंतर्विरोधों और द्वंद्वों को साधती है, इन पंक्तियों में कबीर सुख-दुख, खाना-सोना और जागना-रोना आदि को एक साथ लाए हैं और ये सब मिलकर द्वंद्व का निर्माण करते हैं। यानी अपने परिवेश को, अपने होने को उसकी संपूर्णता में पहचानना, जगत और समाज की तमाम विसंगतियों को भी पहचानना है। कबीर दुखी हैं, क्योंकि उन्हें सामाजिक विसंगतियों का बोध हो गया है। उनका दुख सिद्धार्थ के सुख और बुद्ध के दुख से जुड़ रहा है। हम जानते हैं कि ज्ञान मिलने के बाद बुद्ध ने जीवन को दुखों का सागर कहा था। आध्यात्मिकता की बजाय सामान्य जन-जीवन के धरातल पर भी सोचें तो बोध का होना पूरे समाज से जुड़ना हो जाता है और उस प्रक्रिया में दूसरों की पीड़ा से दुख की अनुभूति होती है।

इसी बात को पाँच सौ साल बाद के कवि 'मुक्तिबोध' अपने ढंग से उठाते हैं—

आत्मा में भीषण, सत्-चित्-वेदना जल उठी, दहकी
विचार हो गए विचरण-सहचर।

यहाँ भी सामाजिक बोध से उत्पन्न वेदना का चित्रण है। हो सकता है, कभी सत्य और चेतना को पाना आनंद का विषय रहा हो, परंतु आज के त्रासद एवं जटिल परिवेश में सच

को जानने और चेतना को पाने के बाद आनंद का नहीं, वेदना का जन्म होता है, क्योंकि समाज का बड़ा हिस्सा दुखी एवं अभावग्रस्त है। वह इतना पीड़ित है कि उसका बोध आग की तरह दहकाने वाला है। साथ ही जहाँ कबीर ने अपने समय के प्रचलित छंद, दोहे का प्रयोग किया है और उसमें तुक है, वहीं मुक्तिबोध मुक्तछंद की कविता से अपने समय की जटिलता को व्यक्त करते हैं। दोनों की संवेदना का धरातल एक जैसा है, परंतु युग का अंतर कविता के रूप एवं संरचना में नज़र आ रहा है। कविता में नयापन का, बार-बार देखे हुए के भीतर के अदेखेपन का बहुत महत्व होता है, इसीलिए कविता में प्रकृति बार-बार आती है, क्योंकि वह रोज़ नयी हो जाती है। एक ही चाँद को सैंकड़ों कवियों ने अपने ढंग से देखा है किसी को वह ताज़े खिले चेहरे की तरह लगता है तो किसी को रोटी की तरह, किसी को उसका मुँह टेढ़ा लगता है तो किसी को सौंदर्य का सबसे बड़ा प्रतिमान नज़र आता है।

शब्दों के नये प्रयोग से नये अर्थ का सृजन कविता में ज़्यादा होता है, परंतु इसके अतिरिक्त नये शब्दों का निर्माण भी रचनाकार करता है। ब्रह्म को सच्चिदानंद कहा गया है, परंतु परंपरागत 'सच्चिदानंद' शब्द को मुक्तिबोध ने बिलकुल नया रूप, नया अर्थ और नया संदर्भ दे दिया। कई बार पूर्वपरिचित के नये पक्ष को कविता उद्घाटित करती है। यानी कविता में अनदेखे को देखने और उसे रचने का भाव इसे गद्य की तुलना में विशेष बनाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि गद्य नहीं रचा जाता है। आशय यह है कि कविता में लय, छंद, ध्वनि और भाषा को लेकर अतिरिक्त सचेतनता बरती जाती है। यह सचेतनता जितनी सहज होती है, कविता उतनी ही अच्छी मानी जाती है। इसी प्रयास के कारण कविता में शब्द और अर्थ अपनी स्वतंत्र सत्ता खोकर आपस में घुलमिल जाते हैं और एक नये अर्थ का सृजन करते हैं। इसी नये अर्थ को विद्वानों ने रमणीय अर्थ, व्यंग्य, उक्ति वैचित्र्य और नवीन सौंदर्य आदि कहा है। कविता में यह सौंदर्य विशिष्ट भाषिक संरचना के कारण आता है। भाषा की इकाई शब्द है, इसलिए काव्य में शब्द बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है, भले ही शब्द और अर्थ का संबंध स्थायी न हो पर उनमें एक गहरा जुड़ाव होता है। कविता में किसी शब्द का विकल्प नहीं हो सकता, इसीलिए कॉलरिज ने उसे सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम कहा है। यही कारण है कि किसी कहानी को हम छोटा-बड़ा कर सकते हैं। उसे अपनी भाषा में बदलाव के साथ प्रस्तुत कर सकते हैं या अपने ढंग से याद कर सकते हैं, लेकिन कविता में यह उस तरह संभव नहीं, क्योंकि वह केवल 'बयाँ' नहीं 'अंदाज़े बयाँ' भी होती है। यानी कविता में 'क्या कहा जा रहा है' के बराबर महत्व 'कैसे कहा जा रहा है' को दिया जाता है। इसी कारण अन्य विधाओं की तुलना में कविता के अनुवाद में ज़्यादा मुश्किल आती है। यहीं एक बात और समझने की है कि पुरानी और नयी कविता में क्या अंतर है?

पुरानी कविता-नयी कविता...

ऐसे कविता— रसिक अध्यापकों की भी कमी नहीं जो यह कहते नहीं अघाते कि दम तो पुरानी कविता (यानी छंद, अलंकार और तुकांत पदावली की कविता) में ही था, नयी यानी आधुनिक काल की छंद, अलंकार मुक्त कविता में वह बात नहीं कि वह काव्यरसिकों को प्रभावित कर सके, लेकिन ऐसी बात कहने वाले यह नज़रअंदाज़ कर जाते हैं कि कविता ज्ञान या कला के अन्य अनुशासनों की तरह अपने समय के विवेक, आकांक्षा और तनावों को प्रकट करती है। हाँ, उसकी आधारभूत विशेषता कला मानदंडों का निर्वाह करती है। सच तो यह है कि प्राचीन या मध्यकालीन कविता और आधुनिक कविता के पाठ की अलग-अलग कसौटियाँ हैं। उन कसौटियों और मानकों को समझे बिना न तो कविता का पाठ संभव है और न ही अध्यापन।

प्राचीन कविता के मूल्यांकन के अनेक आधार हो सकते हैं। मसलन— छंद की मौजूदगी का आकलन, अलंकारों का कथन, भंगिमा के संदर्भ में विश्लेषण। तुक, मध्यकालीन कविता और आधुनिक काल के आरंभिक चरणों में लिखी गई अनेक कविताओं की एक आधारभूत विशेषता है। यहाँ विवरण में जाने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हिंदी साहित्य का सामान्य पाठक इन संदर्भों से बखूबी परिचित है। असल समस्या इस बात की है कि मुक्त छंद की कविताओं का पाठ, अध्यापन और परीक्षण कैसे हो। प्रायः पुरानी काव्यरुचियाँ इस मसले पर अपनी अत्यंत सरलीकृत राय देती हैं कि ऐसी कविताओं को कविता नहीं मानना चाहिए, लेकिन सच्चाई कुछ और है, ज़रूरत इस बात की है कि छंद मुक्त या अगेय कविता का पाठ अलग ढंग से हो। आज की कविता अन्य कलारूपों मसलन— चित्रकला, नाट्यकला के अधिक करीब आई है। करीब आने के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ हैं। ठीक उसी तरह जैसे भक्तिकालीन कविता या रीतिकालीन कविता के अलग-अलग तरह के सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ थे। कविता पाठ, अध्यापन और मूल्यांकन के समय, आधुनिक काल की छंदमुक्त कविता के बहनापा भरे उल्लिखित संदर्भ को याद रखने की ज़रूरत है। बकौल हिंदी कवयित्री 'अनामिका', 'बहनापा कलामाध्यमों' में भी होता है। आधुनिक कविता ने गाना छोड़ा तो इसलिए कि विश्वयुद्ध हो या हिंदुस्तान का बँटवारा, खूनमखून हो गई बीसवीं सदी के आरंभ में दुनिया के हर तीसरे घर में एक लाश पड़ी थी। ऐसे में गाया कैसे जाता? एफ़.आर.लीविस ने जिस 'म्यूज़िक ऑफ़ मीनिंग' (अर्थ संगीत) की बात की थी, वह तो कविता में बचा रहा, पर संगीत से ज़्यादा चित्रकला, वास्तुकला और नाट्यकला से अपना गठबंधन कविता ने अधिक मज़बूत किया। बिंबों, संवादों और संदर्भित आख्यानों के चुनिंदा ऋणों में जीवन-जगत की विडंबनाएँ वह फ़्लैश करने लगी। फ़ोटोग्राफ़ी और सिनेमैटोग्राफ़ी की 'क्षिप्त फ़ोकल शिफ़्ट', 'ज़ूम', 'मोंटाज़' आदि तकनीकों का भी अत्यधिक सृजनात्मक

उपयोग हर अच्छी कविता ने ढंग से किया। ज़ाहिर है आज की कविता के अध्यापन ही नहीं मूल्यांकन के संदर्भ में भी इन मानकों को याद रखने की ज़रूरत है।

जीवन में प्रत्यक्ष भौतिक अनुभव के अतिरिक्त भी कुछ अनुभव होते हैं, जिन्हें पकड़ने की कोशिश मानव जाति आदि काल से करती रही है। नॉनसेन्स के भीतर की सेंसेबिलिटी (निरर्थक माने गए के भीतर की सार्थकता), तर्कातीत के भीतर के तर्क को भी वह खोजता-पहचानता रहा है। खासतौर से जब मानव का बुद्धिपक्ष कम हावी होता है या जब बुद्धि बोझ न रहकर सहज अनुभव बन चुकी होती है, तब इस निरर्थक और तर्कातीत में से भी बात निकलती है। इसका सबसे अच्छा प्रमाण छोटे बच्चों की बातों और उनके किस्सों में मिलता है, जहाँ रात में सूरज पर जाया जा सकता है, किसी दिन ह्वेल की पूँछ पकड़ तैराकी का मज़ा लिया जा सकता है आदि। भौतिक जगत और अंत:जगत का यह अंतरंग संवाद कविता अपने ढंग से स्थापित करती है और इस प्रक्रिया में कई बार तर्क, बाह्य सत्य से परे ले जाती है।

उदाहरण के लिए, हम शमशेर बहादुर सिंह की कविता *चाँद से थोड़ी-सी गप्पें* ले सकते हैं— सामान्यतौर पर चाँद के साथ बात नहीं की जा सकती, परंतु कवि की इस गप्प में हमें खूब मज़ा आता है। सवाल उठता है कि इसमें वह कौन-सी चीज़ है जो हमें आनंद देती है। निश्चित रूप से चाँद का दिखनेवाला रूप रोज़ बदलता रहता है और हम सब उसे जानते हैं, परंतु उसे एक तरह का रोग बतलाना और बिलकुल किसी बच्चे की तरह कवि का उसे चिढ़ाना, उससे आत्मीय संवाद स्थापित करना और कुल मिलाकर उसे अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाते हुए उसे छेड़ना इस कविता को महत्वपूर्ण बनाता है। निश्चित रूप से इसमें भाषा का खास ढंग से प्रस्तुतीकरण और नए प्रयोगों (खूब हैं गोकि!, बिलकुल आदि) की बड़ी भूमिका है।

तात्पर्य यह कि बुद्धि से ही सबकुछ संचालित नहीं होता, कविता हमारे भीतर के अबोधपन को, हमारे भीतर के बच्चे को सामने ले आती है। वह मासूमियत को बचाने का भी काम करती है और कविता को पढ़ाना मनुष्य की इस आदिम मासूमियत से जुड़ने का और एक नन्हे बच्चे के कोरेपन को महसूसने का, तर्क और बुद्धि से दूर बैठे जीवंत अनुभव को पकड़ने का एक विनम्र प्रयास भी होता है।

कक्षा में कविता से कुछ खेल

कविता-शिक्षण के उद्देश्यों तथा गतिविधियों में स्पष्ट जुड़ाव होना चाहिए। गतिविधियों की रचना तथा उनका भोग शिक्षण के किन्हीं उद्देश्यों के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। अन्यथा वह गतिविधि न रहकर कुछ और ही बन जाएगी। इसलिए कविता-शिक्षण के लिए

गतिविधियों की रचना कविता-शिक्षण के उद्देश्यों के अनुरूप होनी चाहिए। कविता-शिक्षण के कुछ उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं—

उद्देश्य—1

कविता के वाचन से उसको समझना

उद्देश्य—2

कविता के विभिन्न अर्थ-स्तरों और अर्थ-संदर्भों को समझने की क्षमता का विकास करना

उद्देश्य—3

कविता के कला पक्ष की समझ बनाना

उद्देश्य—4

कविता रच सकने की क्षमता का विकास करना

उद्देश्य—1 के लिए कुछ गतिविधियाँ

गतिविधि—1

शिक्षक/शिक्षिका द्वारा कविता का सस्वर वाचन करके दिखाया जाए। फिर दो-तीन विद्यार्थियों से वाचन करवाया जाए। जिस समय विद्यार्थी वाचन कर रहे हों, उस दौरान शिक्षक द्वारा उनके वाचन के तरीकों का सतत अवलोकन किया जाता रहेगा। अगर शिक्षक को लगता है कि विद्यार्थियों के वाचन से कविता के भाव को समझना मुश्किल है तो वे पुन: वाचन करके दिखाएँगे। इस प्रक्रिया को तब तक आगे बढ़ाया जाता रहेगा जब-तक उद्देश्य—1 के संदर्भ में कक्षा की स्थिति बेहतर नहीं हो जाती।

गतिविधि—2

शिक्षक/शिक्षिका कविता को रिकॉर्ड कर लें। कक्षा में रिकॉर्ड की हुई कविता सुनाई जाए। फिर कुछ विद्यार्थियों से वाचन करवाया जाए। उनके वाचन का अवलोकन किया जाए। अवलोकन के आधार पर निर्णय लिया जाए कि फिर से रिकॉर्ड सुनाने की ज़रूरत है या नहीं। इस प्रक्रिया को तब-तक बनाए रखा जा सकता है जब-तक उद्देश्य के संदर्भ में कक्षा की स्थिति बेहतर न हो जाए।

गतिविधि—3

कक्षा को ज़रूरत के हिसाब से अनेक समूहों में बाँट दिया जाए। उनसे कहा जाए कि प्रत्येक समूह दी गई कविता के पाठ का अपना तरीका विकसित करेगा। इसके लिए उन्हें बीस

मिनट का समय दिया जा सकता है। समय हो जाने पर प्रत्येक समूह से किसी एक विद्यार्थी को कविता पढ़ने के लिए बुलाया जाए। विद्यार्थियों से कहा जाए कि जब एक विद्यार्थी कविता को पढ़ रहा/रही हो तब बाकी विद्यार्थी कविता पढ़ने के तरीके पर ध्यान दें। सभी समूहों की बारी आ जाने के बाद उसी दिन या अगले दिन प्रत्येक समूह के सदस्यों द्वारा किए गए कविता पाठ के तरीकों पर कक्षा में चर्चा की जाए। चर्चा से उभरे बिंदुओं को कविता के पाठ के तरीकों में शामिल करने के अवसर दिए जाएँ।

गतिविधि—4

गतिविधि—3 में जहाँ पर समूह के एक विद्यार्थी से कविता का पाठ करवाया गया, यदि कविता लयात्मक है, तो गतिविधि—3 में दर्ज़ प्रक्रिया के अंतर्गत समूह के सभी सदस्यों से कविता का सामूहिक गायन/पाठ कराया जा सकता है।

उद्देश्य—4 के लिए कुछ गतिविधियाँ

उद्देश्य—4 कविता सृजन की क्षमता के विकास पर केंद्रित है।

गतिविधि—1

आइए कविता के सृजन के अवसर उपलब्ध करवाने के उदाहरण पर विचार करें। इस उदाहरण में भगवतीचरण वर्मा की कविता *'हम दीवानों की क्या हस्ती'* को, कविता सृजन का ज़रिया बनाया गया है—

हम दीवानों की क्या हस्ती

हम दीवानों की क्या हस्ती,
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले,
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।

— भगवतीचरण वर्मा

कक्षा 8 की पाठ्यपुस्तक में दिए गए इस पद्यांश को केंद्र में रखकर कविता सृजन की कुछ गतिविधियाँ करवाई जा सकती हैं।

विद्यार्थियों से कहा जाए कि पद्य में 'दीवानों' की जगह 'बच्चों' शब्द को रखकर कविता बनाइए। ऐसा करने से एक अलग कविता इस प्रकार बन सकती है—

सृजन—1

हम बच्चों की क्या हस्ती,
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले,
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।

विद्यार्थियों से कहा जाए कि सृजन—1 में हस्ती की जगह मस्ती, आज की जगह अभी, कल की जगह अभी, मस्ती का आलम की जगह सारा मोहल्ला रखकर नया पद्यांश बनाएँ। ऐसा करने से पद्यांश बनेगा—

सृजन—2

हम बच्चों की क्या मस्ती,
हैं अभी यहाँ, अभी वहाँ चले,
सारा मोहल्ला साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।

यहाँ पर विद्यार्थी-शिक्षक/शिक्षिकाओं की मदद के लिए सृजन—1 तथा सृजन—2 उदाहरण भर हैं। वे अपने अनुभवों के आधार पर इनसे बेहतर गतिविधियाँ रच सकते/सकती हैं।

गतिविधि—2

किसी दृश्य को देकर या चित्र दिखाकर अथवा अखबार में छपी किसी भावपूर्ण खबर पर विद्यार्थियों को कविता सृजन के अवसर दिए जा सकते हैं।

कविता के उद्देश्य—2 तथा उद्देश्य—3 को ध्यान में रखकर एक-एक गतिविधि तैयार कीजिए।

7.1.2. गद्य की विविध विधाओं को पढ़ना-पढ़ाना

जैसे जीवन विविधरंगी होता है, उसी तरह भाषा अभिव्यक्ति के भी अनेक रूप होते हैं। हम कभी किसी अवसर या व्यक्ति को याद करते हैं तो कभी किसी वैचारिक यात्रा पर भाषा के रथ पर सवार हो निकल पड़ते हैं, कभी जीवन-जगत की कोई कहानी याद आती है तो कभी समग्र जीवन की गाथा कहने का मन होता है तो कभी यह भी होता है कि रचने का हमारा सपना शब्दरूप प्राप्त करता है। यानी भाषायी अभिव्यक्ति विविधरूपा होती है। गद्य की विविध विधाएँ जीवन और भाषा की इन्हीं विविधरूपा निर्मितियों की अभिव्यक्ति हैं। रचने और देखने की आदिम वृत्ति ने जिन अभिव्यक्ति कौशलों को संभव किया उनमें कविता पहले आई। मानव जीवन की लंबी यात्रा के बाद अनेक नयी परिस्थितियाँ, चुनौतियाँ, सपने, संघर्ष और प्रतिबद्धताएँ भी उभरीं। ऐसा लगा कि पद्य या कविता के रूपाकार में बहुत-सी बातों को

> गद्य जीवन संग्राम की भी भाषा है।
>
> —सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, *सुधा* की संपादकीय टिप्पणी, 13 अक्तूबर, 1933

कहने में सफ़लता नहीं मिल पा रही है। ऐतिहासिक और सामाजिक, सांस्कृतिक भूमियाँ भी नए परिवेश का निर्माण कर रही थीं। फिर गद्य विधाओं का संसार बना। यह अकारण नहीं है कि काव्यसर्जक संसार ने एक ज़माने में यह समझा था कि 'गद्य कवियों का निकष है।' खड़ी बोली हिंदी की दुनिया में गद्य का आना भी एक युगांतकारी घटना थी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को 'गद्यकाल' कहा है, दरअसल आधुनिक काल के पहले हिंदी साहित्य प्रायः पद्यात्मक ही रहा, लेकिन आधुनिक काल में गद्य का महत्व हिंदी साहित्य का केंद्रीय विषय बन गया। हिंदी गद्य की पूर्वपीठिका आधुनिकता है। मध्यकालीन चेतना और आधुनिक चेतना में अलगाव के कुछ आधार हैं। उनपर एक नज़र डालना ज़रूरी है— आधुनिकता का आधार यथार्थ बोध होता है। इसका प्रभाव यह हुआ कि आधुनिक काल का साहित्य काव्यरूढ़ियों, कवि शिक्षा या बँधी-बँधायी प्रणाली पर न चलकर अपने इर्द-गिर्द के विषयों पर आधारित होने लगा। यथार्थ बोध का मतलब है— यथार्थ की विषमता का बोध। यह अकारण नहीं है कि इस युग के साहित्यकारों ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और अन्य तरह की विषमताओं पर खुलकर लिखा। साहित्य विषमताओं पर न केवल मुखर हुआ, अपितु विषमता को पाटने के लिए व्यग्र भी हुआ। अन्य शब्दों में साहित्य ने विषमता से पीड़ितों के प्रति अपनी पक्षधरता ज़ाहिर की। यानी साहित्य उत्तरदायित्व और सामाजिक चेतना से युक्त हो गया।

> आधुनिकता संप्रदाय का विरोध करती है, क्योंकि आधुनिकता गतिशील प्रक्रिया है, संप्रदाय स्थिति-संरक्षक, परंतु परंपरा से आधुनिकता का वैसा विरोध नहीं होता। दोनों ही गतिशील प्रक्रियाएँ हैं। दोनों में अंतर केवल यह है कि परंपरा यात्रा के बीच पड़ा हुआ अंतिम चरण है, जबकि आधुनिकता आगे बढ़ा हुआ गतिशील कदम है। आधुनिकता का अपने आप में कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य ने अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है, उन्हें नए संदर्भों में देखने की दृष्टि आधुनिकता है।
>
> —आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, *परंपरा बनाम आधुनिकता*, शीर्षक निबंध
>
> जिसे हम आधुनिकता कहते हैं वह एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। आधुनिकता वह है जो मनुष्य की ऊँचाई उसकी जाति या गोत्र से नहीं, बल्कि उसके कर्म से नापती है। आधुनिकता वह है जो मनुष्य-मनुष्य को समान समझे।
>
> —रामधारीसिंह दिनकर, *आधुनिकता बोध*, शीर्षक निबंध

सामान्यतः रीतिकाल के अंत से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परंपरा रही है। नयी सामाजिक-राजनीतिक चेतना के वाहक 1857 की क्रांति के वर्ष को यह श्रेय दिया जाता है, लेकिन साहित्य में नयी विचारधारा का प्रवेश भारतेंदु के आगमन (1868) से माना जाता है। पर हिंदी गद्य के इतिहास और उसकी प्रवृत्तियों को समझने के लिए थोड़ा पीछे जाना पड़ेगा। खड़ी बोली गद्य के विकास के लिहाज़ से फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की बेहद उल्लेखनीय भूमिका रही है। इस कॉलेज की स्थापना सन् 1800 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड मार्क्विस वेलेजली द्वारा हुई। कॉलेज के पहले हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर डॉ. जॉन गिलक्राइस्ट ने हिंदी और उर्दू दोनों में गद्य पुस्तकें तैयार करने के लिए दो भाखा (भाषा) मुंशियों की नियुक्ति की— लल्लूलाल और सदल मिश्र। लल्लूलाल ने खड़ी बोली में गद्य पुस्तक *प्रेमसागर* और सदल मिश्र ने *नासिकेतोपाख्यान* नामक पुस्तकें लिखीं। इनके समकालीन दो अन्य स्वाधीन लेखक (जिनका संबंध फ़ोर्ट विलियम कॉलेज से नहीं था) मुंशी सदासुखलाल नियाज़ और उर्दू के मशहूर शायर इंशाअल्ला खाँ का नाम भी खड़ी बोली के आधुनिक गद्य लेखकों में बड़े सम्मान से लिया जाता है। हिंदी के आरंभिक गद्य लेखन के इतिहास में इन्हें 'गद्य चतुष्टय' कहा जाता है। मुंशी सदासुखलाल नियाज ने *विष्णुपुराण* के नैतिक उपदेशात्मक प्रसंगों के आधार पर सुखसागर की रचना खड़ी बोली गद्य में की। इंशाअल्ला खाँ की रचना उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी (रचनाकाल 1778–1803 के बीच) लिखकर एक नये तरह के हिंदी गद्य लेखन का परिचय दिया। इस रचना को हिंदी गद्य के इतिहास में 'मील का पत्थर' कहा जा सकता है। इस कहानी ने साहित्य की भाषायी दुनिया में एक निर्णायक हस्तक्षेप किया था।

खड़ी बोली हिंदी के आरंभिक गद्य लेखन में ईसाई मिशनरियों और आर्य समाज का बड़ा योगदान था। मिशनरियों ने स्कूली शिक्षा का माध्यम खड़ी बोली रखा। कलकत्ता,

> एक दिन बैठे-बैठे यह बात ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले।
>
> —*रानी केतकी की कहानी* का एक अंश, इंशाअल्ला खाँ; आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास — पृष्ठ संख्या–396
>
> आधुनिक काल में गद्य का आविर्भाव सबसे प्रधान साहित्यिक घटना है।
>
> —आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* प्रथम संस्करण का वक्तव्य, पृष्ठ संख्या–6

आगरा, इलाहाबाद जैसी जगहों पर 'स्कूल बुक सोसाइटियों' और मुद्रणालयों की स्थापना कर अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने *सत्यार्थ प्रकाश*, *ऋग्वेद भाष्य-भूमिका* जैसे ग्रंथों की रचना हिंदी में की। आर्य समाज पर उनके लेखन का गहरा प्रभाव पड़ा। 1877 में आर्यसमाजी श्रद्धालाल फिल्लौरी ने *भाग्यवती* उपन्यास लिखकर गद्य लेखन का एक आदर्श प्रस्तुत किया।

खड़ी बोली हिंदी गद्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं की उल्लेखनीय भूमिका रही। ऐसे आरंभिक प्रयासों में *उदंत मार्तंड*, *बंगदूत*, *बनारस अखबार*, *सुधाकर* और *बुद्धि प्रकाश* को याद किया जा सकता है। साहित्यिक योगदान के लिहाज़ से उन पत्रिकाओं की खास भूमिका रही, जिन्हें साहित्यकारों ने निकाला। भारतेंदु हरिश्चंद्र की *कविवचन सुधा*, *हरिश्चंद्र मैगज़ीन*, प्रतापनारायण मिश्र का *ब्राह्मण*, देवकीनंदन तिवारी का *प्रयाग समाचार*, चौधरी बद्रीनारायण प्रेमघन की *आनंद कादंबिनी*, किशोरीलाल गोस्वामी का *उपन्यास*, गोपाललाल गहमरी का *जासूस* आदि पत्र इस दिशा में खासतौर पर उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का फैलाव, भारत के भविष्य की संकल्पना, हिंदी भाषा का प्रचार और हिंदी लिखने वाले लोगों की संख्या-वृद्धि इन पत्रों का घोषित उद्देश्य था। ब्रजभाषा का जाना और खड़ी बोली का आना, मध्यकालीन चेतना का आधुनिक चेतना द्वारा स्थानापन्न होना, ऐसी अनेक विशेषताओं के कारण, भारतेंदु हरिश्चंद्र ने *कालचक्र* में 1873 में इन बातों को पुष्ट करते हुए लिखा, 'हिंदी नये चाल में ढली' (भारतेंदु समग्र, पृष्ठ 780)। प्रसंगवश इसी साल *हरिश्चंद्र मैगज़ीन* और *हरिश्चंद्रिका* का भारतेंदु हरिश्चंद्र ने प्रकाशन शुरू किया था। इसे दूसरी इकाई में आप पहले भी विस्तार से पढ़ चुके हैं।

अधिकांश आधुनिक गद्य विधाओं का जन्म भारतेंदु युग में हुआ। इस युग में जन्म लेकर विकसित होने वाली तीन साहित्यिक विधाएँ हैं— नाटक, निबंध और उपन्यास। भारतेंदु युग से पहले नाटक के नाम पर मिलने वाली रचनाएँ नगण्य हैं और वे विधायी रूप से नाटक हैं भी या नहीं इस पर मतभेद है। इस युग के उल्लेखनीय रचनाकारों में भारतेंदु के अलावा लाला श्रीनिवास दास, ठाकुर जगमोहन सिंह, पं. राधाचरण गोस्वामी आदि ने अपनी रचनात्मक प्रतिभा से जनमानस को चमत्कृत किया। आर्थिक विषमता, स्वाधीनता, नारी शिक्षा, धार्मिक पाखंड और हिंदी भाषा जैसे विषय इस युग की गद्य रचनाओं की परिधि में शामिल हैं। इन विधाओं ने हिंदी के पाठकों में ज़बर्दस्त वृद्धि की। एक बहुप्रसिद्ध रचना के साक्ष्य पर इसे समझें, देवकीनंदन खत्री के उपन्यास *चंद्रकांता* और *चंद्रकांता संतति* को पढ़ने के लिए अनेक हिंदीतर भाषी लोगों ने हिंदी सीखी।

द्विवेदी युग को भारतेंदु युग का विस्तार कहा जाता है। अभिव्यक्ति भाषा के रूप में भारतेंदु युग में खड़ी बोली अपनी जगह बना चुकी थी, लेकिन अभिव्यक्ति भाषा के लिए

जिस रचना-उपयुक्त स्थिर भाषा की ज़रूरत होती है उसे अभी भाषा में आना बाकी था, इसे द्विवेदी युग ने पूरा किया। 'सरस्वती' का प्रकाशन, नागरी प्रचारिणी सभा और प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्थाओं का बनना इस युग की ऐसी उल्लेखनीय घटनाएँ थीं, जिनके चलते हिंदी गद्य और पाठकों की अभिरुचियों का फैलाव हुआ। इस युग की बौद्धिकता ने काल की मुख्यचेतना के रूप में इतिवृत्तात्मकता और गद्यात्मकता को प्रतिष्ठित किया। अनेक नयी गद्यविधाओं का जन्म हुआ— आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, यात्रा विवरण, रेखाचित्र आदि। दरअसल स्वाधीनता आंदोलन के उस दौर में अनेक नए सामाजिक-सांस्कृतिक उभारों ने अस्मिताओं की तलाश और स्वीकृति को भविष्य का लक्ष्य बनाया। अनेक गद्यविधाओं का आना इस युगीन सच्चाई का साक्ष्य है कि अभिव्यक्ति की दुनिया अनंतरूपा होती है। बहुरूपा अभिव्यक्ति कौशलों का बनना और विकसना मानवीय समाज के अधिकाधिक जनतांत्रिक लक्ष्य की ओर बढ़ना भी है। इसी ने बहुत अनकहे कहन को अभिव्यक्ति की नयी विधा दी।

7.1.3 कहानी को पढ़ना

कथा, किस्सा, कहानी, गल्प, आख्यान, उपाख्यान, वृत्त, इतिवृत्त, गाथा, वार्ता आदि नामों से हम साहित्य की जिस विधा की ओर संकेत करते हैं वह साहित्य की सभी विधाओं में किसी-न-किसी रूप में मौजूद रहती है। इसे जीवन की एक घटना या संदर्भ के रूप में भी देखा जा सकता है। कहानी में सामान्यत: छोटे परिदृश्य को व्यक्त किया जाता है। दैनिक जीवन की घटनाओं से सहज जुड़ाव और अन्य विधाओं की तुलना में सरल संरचना कहानी को खास बनाती हैं। पहले की कहानियों का सीधा संबंध मौखिक भाषा से जुड़ता है, वह कही और सुनी जाती थीं, इसीलिए कहने का अंदाज़ या दास्तानगोई इसे खास बनाती है। कहानी को गल्प (बांग्ला में) या गप्प कहना इस बात को बताता है कि इसका एक ओर बोलने से और दूसरी ओर कल्पना से बहुत गहरा रिश्ता है, परंतु गल्प या कल्पना होते हुए भी उसका पाँव कहीं-न-कहीं ज़मीन पर रहता है।

कहानी किसी घटना का एक तरह का वर्णन है। इसे बयान या इतिहास के रूप में भी देखा जा सकता है। इसी कारण अंग्रेज़ी में इसे 'नैरेटिव' कहा जाता है, यानी जो कुछ जीवन में घटा उसे सरल ढंग से कह देना सबसे ज़्यादा कहानी के करीब होता है। कहानी एक तरह की यात्रा है, ठीक वैसे ही जैसे हमारा जीवन एक यात्रा है। जिस प्रकार सरल से सरल जीवन भी विभिन्न घटनाओं से भरा होता है, उसी प्रकार कहानी की यह यात्रा भी सपाट, शांत या बाधाहीन यात्रा नहीं, बल्कि हलचल और संघर्षों से भरी यात्रा है। यह संघर्ष या द्वंद कहानी को महत्वपूर्ण बनाता है।

इसे और अच्छे से समझने के लिए हम प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'दो बैलों की कथा' का उदाहरण लेते हैं—

कल्पना करें कि झूरी के दोनों बैल हीरा और मोती हमेशा झूरी के ही घर पर रहते, अच्छा खाते, सबका स्नेह पाते और खूब मेहनत से खेतों में काम करते और कहानी उनके बूढ़े होने के साथ खत्म हो जाती। न तो बैलों को भूखा रहना पड़ता, न सांड से उनकी मुठभेड़ होती और न ही उन्हें कांजी हाउस में बंद होना पड़ता। क्या तब भी हमें यह कहानी अच्छी लगती। असल में कहानी में हम अपने संघर्षों और सपनों को खोजते हैं और कहानी के नायक की विजय में अपनी विजय देखते हैं। हममें से प्रत्येक की ज़िंदगी एक शानदार कहानी है। जीवन में वे सारे तत्व होते हैं, जिन्हें हम कहानी के तत्वों के रूप में रेखांकित करते हैं। पात्र, कथोपकथन, संवाद, नाटकीयता, चरम उत्कर्ष आदि।

कहानी चकित करती है। आगे क्या होगा, पात्र इस परिस्थिति से कैसे निपटेगा। यह कुतूहल भाव, यह रोमांच पाठक या श्रोता को कहानी से जोड़ता है। छोटे आकार के कारण कहानी की गति तेज़ होती है। इसमें किसी एक पात्र पर ही फ़ोकस होता है, अन्य पात्र बस उस मुख्य पात्र को सहारा देने के लिए आते हैं। जैसे उपरोक्त कहानी बैलों की कथा को लेकर आगे बढ़ती है। जब वे गया के घर से भागे थे तो वहाँ क्या हुआ या सांड को उन्होंने सींग मारा था उसका क्या हुआ, कांजी हाउस से जिन जानवरों को आज़ाद किया था उनका क्या हुआ आदि इन प्रश्नों का ज़िक्र कहानी में नहीं है। कहानी किसी घटना की प्रक्रिया की जटिलता और उसके उपाख्यानों और उपकथा वस्तुओं के विवरण की बजाय किसी घटना या अनुभव विशेष पर केंद्रित होती है। अगर संपूर्ण परिस्थितियों का लेखक वर्णन करने लगे तो फिर वह उपन्यास हो जाएगा।

> उन्होंने (भारतेंदु ने) हिंदी साहित्य को एक नए मार्ग पर खड़ा किया। वे साहित्य के एक नए युग के प्रवर्तक हुए। यद्यपि देश में नए-नए विचारों और भावनाओं का संचार हो गया था, पर हिंदी उससे दूर थी। लोगों की अभिरुचि बदल चली थी, पर हमारे साहित्य पर उसका कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता था।
>
> —आचार्य रामचंद्र शुक्ल— *हिंदी साहित्य का इतिहास*

(कोई भी अनगढ़ ढंग से यह कह सकता है कि उपन्यास का रूप आकार से तय होता है जबकि कहानी का आकार उसके रूप से तय होता है।)

कहानी क्यों पसंद आती है?

कहानी एक तरह के खुलेपन का निर्माण करती है, जिसमें एक ही कहानी को तमाम लोग अपने ढंग से व्यक्त कर सकते हैं, यानी कहानी सुनने और सुनाने के लिए अवकाश देती है। इसमें कल्पना शक्ति से तिल को ताड़ बना देने की छूट होती है। एक ही कहानी (प्रेमचंद या टालस्टाय की) दो पेज से बीस पेज में मिल जाती है। एक ही कहानी विभिन्न भाषाओं में थोड़े बदले रूपों में मिल जाती है। पंचतंत्र की कथाएँ चीन से लेकर अरब तक फैली हुई हैं। यह कहानी की संरचना का लचीलापन ही है, जिसके कारण हम उसमें इतना कुछ जोड़ या घटा पाते हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि कहानी अन्य विषयों और विधाओं की तुलना में पाठकों/ विद्यार्थियों को सहज ढंग से मनोनुकूल अवकाश देती है। इसमें व्याकरण या छंद का कठोर नियम नहीं होता, गणित के सूत्र या विज्ञान के कार्य-कारण संबंध वाली बाध्यता नहीं होती। कहानी के पास हमेशा विकल्प मौजूद होता है, जो केवल कथा कहनेवाले पर ही नहीं, बल्कि श्रोता की मन:स्थिति के आधार पर भी बदल जाने की योग्यता रखता है।

कहानी करती क्या है?

पर सवाल यह है कि कहानी की दुनिया के शिक्षण शास्त्र की दुनिया से क्या रिश्ते हैं। दरअसल कथा-यात्रा अनेक अध्ययन संदर्भों को संभव करती है। मनुष्य के बचपन से कहानी का सीधा रिश्ता जुड़ता है। कहानियाँ प्रथम शिक्षक की भूमिका निभाती हैं। ये हमें अनुमान लगाने हेतु प्रोत्साहित करती हैं। अनुमान लगाने की यह योग्यता धीरे-धीरे अन्य विषयों (गणित-विज्ञान आदि) में मदद करने से लेकर निजी जीवन में समस्याओं के हल ढूँढने तक से जुड़ती है। कहानी भाषा निर्माण में सबसे ज़्यादा मदद करती है, क्योंकि कहानी अपने संदर्भों के कारण अर्थ का अनुमान लगाने की सुविधा देती है। भाषा की क्षमता प्राप्त कर लेने के बाद आगे का बहुत सारा काम आसान हो जाता है। शायद यह भी कहा जा सकता है कि भाषा भी एक तरह की कविता और कहानी है। भाषा भी अपने मन की कहने की कुलबुलाहट, अपने अनुभवों को दूसरों तक ज़्यादा से ज़्यादा मात्रा में पहुँचा पाने की बेचैनी से पैदा हुई होगी। लगभग यही बात कहानी करती है। कहानी में अतीत और भविष्य, कल्पना और यथार्थ, स्मृति और विचार, सच और झूठ आदि इस तरह से घुले-मिले होते हैं कि इनके बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती और अगर खींच दी जाए तो एक अच्छी कहानी बनेगी, इसकी भी गारंटी नहीं ली जा सकती। शायद इसी कारण से कहानी को साहित्य का सबसे स्वाभाविक और अत्यधिक स्वच्छंद रूप माना जाता है। इसमें दृष्टांत, चुटकुले, मज़ाक से लेकर जीवन के गंभीरतम पक्ष तक घुले-मिले होते हैं।

दरअसल हममें से प्रत्येक व्यक्ति रोज़ हज़ारों-लाखों कहानियों के बीच से गुज़रता है। इन्हीं घटनाओं, सूचनाओं और दृश्यों को अपने अनुभवों, कल्पनाओं और स्मृतियों से जोड़कर वह एक ऐसा रूप दे देता है जो परिचित होते हुए भी कुछ अनचिह्न-सा, पुराना होते हुए भी कुछ टटका-सा लगने लगता है और हम कहते हैं कि ये तो बड़ी अच्छी कहानी है।

कहानी हमारे भीतर निहित विस्मय और कुतूहल के भाव का उपयोग करती है, जिसके कारण विद्यार्थियों की कल्पनाशक्ति तेज़ होती है। साथ ही कहानी सहज रूप से हमें ज्ञान से जोड़ती है। घटनाओं के घात-प्रतिघात से पाठकों की संवेदना और अनुभूति निखरती है, इस प्रकार कहानियाँ हमारी समझ का विकास करती हैं। इसका एक दूसरा पक्ष यह है कि कहानियाँ रूढ़ मान्यताओं, पक्षपातों, पुराने मूल्यों और पूर्वाग्रहों का भी पोषण करती हैं। अकसर राजकुमारी अपनी मुक्ति के लिए किसी राजकुमार का इंतज़ार करती मिलती है। पुरुष बहादुर, मज़बूत और उदात्त गुणों से संपन्न होता है। कुछ जातियों, यहाँ तक कि जानवरों की भी रूढ़ छवि का पुरानी कहानियों में प्रयोग हुआ है। कहानी के इस सीमित परिदृश्य को खासतौर से बाल कहानियों के संदर्भ में बदलना ज़रूरी है। निश्चित रूप से समय के साथ कहानी के रूप में भी बड़ा बदलाव आया है।

पुरानी कहानी बनाम नयी कहानी

पहले कहानी सुनने-सुनाने की चीज़ होती थी, बाद में वह पढ़ने-पढ़ाने की चीज़ हो गई, आज के समय की कहानी अनुभव की जटिलताओं को उद्घाटित करती है।...

दरअसल थोड़ा आगे बढ़कर बात करें तो हमारे जीवन में दो चीज़ें बहुत महत्व रखती हैं। एक तो स्मृति और दूसरी भाषा। मनुष्य इसीलिए मनुष्य है, क्योंकि उसके पास मनन करने और याद रखने की क्षमता है। दूसरी ओर वह व्यक्ति कहलाता है, क्योंकि वह खुद को, अपने विचारों को अभिव्यक्त करना चाहता है, खुद को प्रकट करने की अद्‌भुत क्षमता रखता है और यह क्षमता उसे भाषा और स्मृति देती है।

कुछ आवश्यक बिंदु...

पुरानी कहानियों को उपदेश और संदेश की तरह देखा जाता रहा है, परंतु समय और समाज के बदलने के साथ आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र के नज़रिये से इन्हें देखें तो इनमें से अर्थ के कई स्तर निकलते हैं। पंचतंत्र की कहानियाँ किस प्रकार सत्ता संघर्ष से जुड़ती हैं और अपने जीवन को बचाने की कूटनीतिक रणनीतियों को बारीकी से बताती हैं। एक अघोषित युद्ध हर कहानी में मौजूद है जो बदलते समय के अनुरूप व्याख्या की माँग करता है।

किसी रचना की महत्ता के आकलन का यह मानदंड भी होता है कि वह अनेक कालखंड में विभिन्न तरह के पाठ की गुंजाइश संभव करती है। अब इस बात के कुछ शिक्षण

शास्त्रीय संदर्भ की कल्पना करें। जैसे— पंचतंत्र की एक मशहूर कहानी साधु और बिच्छू की है। कथा है— साधु स्नान कर रहे थे और बिच्छू डूब रहा था। साधु ने उसे बचाने की कोशिश की, बहते बिच्छू को हथेली में उठाकर नदी से निकाला। बिच्छू ने डंक मारा, लहूलुहान हथेली के बावजूद साधु ने यह क्रिया अनेक बार दुहराई। मान्यता है कि न साधु ने अपना स्वभाव छोड़ा और न ही बिच्छू ने। अब कल्पना करें कि साधु बिच्छू को निकाले और बिच्छू डंक न मारे। इस मान्यता के भी आधार हो सकते हैं। अनेक अध्ययन बताते हैं कि पशु-पक्षी लंबे समय तक मनुष्य के साथ रहते मनुष्यवत् आचरण करने लगते हैं। उसी तरह अनेक मनुष्य पशु के साथ रहते हुए पशु जैसा व्यवहार करने लगते हैं। इसे रुडयार्ड किपलिंग ने 'जंगल बुक्स' में कला युक्ति की तरह इस्तेमाल किया है। मतलब इतना कि हर कथा पाठ के समयानुकूल दरवाज़े खोलती है। कहानी का बहुसंदर्भी या बहुअर्थी पाठ एक बेहतर समाज (जिसकी एक विशेषता सबके लिए लोकतांत्रिक और सहिष्णु समाज निर्माण है) को रचने में सहायक होता है।

कहानी क्यों?

दरअसल कहानी क्यों है का जवाब यह हो सकता है कि हम हैं इसलिए कहानी है। हमारे मिथक, हमारी स्मृति, हमारे ज्ञान व्यापार, वर्तमान घटनाओं पर हमारी प्रतिक्रियाएँ ये सब एक विशाल कहानी के अंश हैं, इन्हीं अर्थों में शेक्सपियर इस दुनिया को रंगमंच कहते हैं। हज़ारों सालों से इस रंगमंच की अनंत पटकथाएँ लिखी जा रही हैं, हम सब उस पटकथा में लगातार कुछ जोड़ते-घटाते रहते हैं। 'कमलेश्वरजी' का यह कहना कि "विश्व की समस्त अर्वाचीन, लुप्त-विलुप्त और प्राचीनतम सभ्यताओं के नीचे से यदि कहानियों के आधार स्तंभ हटा दिए जाएँ तो सारी सभ्यताएँ भरभराकर कच्ची मिट्टी की तरह गिर पड़ेंगी।"

—कमलेश्वर, पृष्ठ संख्या–4 *कथा–संस्कृति*

इस बात की ओर संकेत कर रहा है कि हमारा वजूद इन्हीं कहानियों पर है। हम कहानी में हैं और कहानी हममें है, इसीलिए जब शास्त्र विकसित नहीं हुए थे तब भी कहानी थी।

शायद ही कोई ऐसा देश होगा, जहाँ कथा साहित्य न हो और जहाँ स्वाभाविक आनंद पाने के लिए कहानियाँ न कही जाती हों, या फिर न पढ़ी जाती हों। मानवीय सभ्यता से जुड़ा एक वह भी समय था जब हर संध्या भोजन आदि से निवृत्त होकर बच्चों के झुंड कहानी किस्सागोई के लिए घर के बड़े-बूढ़ों को घेर लेते थे। देस-परदेस में घूमने वाले मुसाफ़िर रात को जब किसी जगह पर रुकते तो एक-दूसरे के साथ बैठकर नयी-नयी कहानियाँ कहते और सुनते थे।

एक समय ऐसा था कि साँझ का झुटपुटा दूर हुआ नहीं कि ढिबरी की मद्धिम तो कभी तेज़ पड़ती लौ के बीच आवाज़ आती— "एक बार की बात है..." इस आवाज़ के साथ

ही इर्द-गिर्द बैठे बच्चे, जवान या बूढ़े, सभी के नेत्र विस्फारित से होने लगते, कभी सिकुड़ते तो कभी मिचमिचाते। आँखों के साथ-साथ होठों का खुला रह जाना या फिर गुस्से और क्षोभ से भिंच जाना यह सब भी साथ-साथ चलता। विस्मय-विमुग्धता की यह भावना तब तक चलती रहती जब तक कि आवाज़ न आ जाती कि "लो अब खत्म हुई कहानी।"

कुछ महत्वपूर्ण बातें...

कहानी के लिए गल्प, आख्यान, उपाख्यान, वृत्त, इतिवृत्त, गाथा, वार्ता जैसे नाम भी थोड़े भिन्न अर्थों के साथ चलते रहे हैं।

- कहानी का व्यावहारिक जीवन की घटनाओं से एक संबंध होता है।
- कहानी में अतीत और भविष्य, कल्पना और यथार्थ, स्मृति और विचार, सच और झूठ आदि इस तरह से घुले-मिले होते हैं कि इनके बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती।
- हमारे मिथक, हमारी स्मृति, हमारे ज्ञान व्यापार, वर्तमान घटनाओं पर हमारी प्रतिक्रियाएँ ये सब एक विशाल कहानी के अंश हैं।

> जहाँ-जहाँ व्यापार के पुराने अड्डे थे, वहाँ-वहाँ दूर देशांतरों के व्यापारी सरायों में इकट्ठे होते थे और फिर चातुरी, बाबा जी, आशिक-माशूक, कुत्ते-बिल्ली, राजा-रानी, साधु-संतों, दैविक क्षोभ अथवा दैवी चमत्कारों, तंत्र-मंत्र या जादू-टोनों की कहानियाँ ही चलती थीं।
>
> —काका कालेलकर

आज हम कहानी को गद्य साहित्य की महत्वपूर्ण विधा के रूप में पहचानते हैं, पर सच मानें तो लोक जीवन का अभिन्न अंग है कहानी, जिसका जन्म किसी-न-किसी गल्प, देखी-सुनी घटनाओं और कहीं-न-कहीं मन में गहरे पैठी आकांक्षाओं से होता है। हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाएँ, जीवन में हो रही उथल-पुथल, घर-परिवार व कुटुंब की व्यवस्थाएँ सभी कहानियों को जन्म देते हैं। सच पूछिए तो कहानी मानव जीवन की वृहत्तर सृजनशीलता का अटूट हिस्सा है। उसकी स्वभावगत अकुलाहटों और अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की स्वभावसिद्ध छटपटाहटों के मूल में ही कहीं न कहीं कहानी छिपी होती है। पर इस बात से कहीं यह आशय न लिया जाए कि कहानी जीवन से दूर हटकर केवल कल्पना के सुंदर लोक में भ्रमण करती है। कहानी का जीवन के साथ गहरा संबंध है। जैसा कि गिजुभाई बधेका ने कहा है—"साहित्य, संगीत व कला आदि में आत्मा का प्रतिबिंब है। कहानी लोक जीवन का, लोकात्मा का प्रतिबिंब है। इसका उद्देश्य मानवीय आत्मा की साहित्य-विषयक कला को व्यक्त करना है। संगीत ध्वनि प्रधान कला है; चित्र रूप प्रधान कला है;

साहित्य काव्य प्रधान कला है; कहानियाँ जीवन के अनेक रसों का भंडार हैं। विविध रसों के भोक्ता इन रसों का पान करके आनंद व तृप्ति प्राप्त कर सकते हैं। साहित्य का यह रस व भाग कहानी में जितने अधिक परिमाण में प्रकट होता है, उतने ही परिमाण में कहानी कहने का उद्देश्य आनंद प्रदान करना है।"

> कहानी किसी एक की नहीं, वह कहने वालों की है, सुनने वालों की भी। इसकी, उसकी, सबकी, सृष्टि के समूचे परिवार की। नानी की मुहर इस पर है। इस लोक की प्रजा होने के कारण हर किसी की कहानी लिखी और सुनी जा सकती है।
>
> —कृष्णा सोबती

शिक्षण शास्त्रीय दृष्टि से विचार करके देखें तो कथा-कहानियाँ बच्चों की उदात्त भावनाओं और आकांक्षाओं का जीवनदायी स्रोत हैं। कथा-कहानियों के बिंबों के प्रभाव में बच्चों में उत्पन्न होने वाली सौंदर्य अनुभूतियाँ विचारों के प्रवाह को सक्रिय बनाती हैं, जो मस्तिष्क को सक्रिय कार्य की प्रेरणा देती हैं। कहानियों के बिंबों के ज़रिये शब्द अपनी सूक्ष्मतम छटाओं के साथ बच्चों के मन में प्रवेश करते हैं और उनके विचारों-भावनाओं की अभिव्यक्ति का सजीव यथार्थ बन जाते हैं। कहानियों के बिंबों से विद्यार्थी सोचना, तर्क करना अमूर्त चिंतन करना सीखते हैं। अच्छाई और बुराई के प्रति अपनी निजी राय बना पाते हैं। कहानियों के संग जीते-चलते वे मस्तिष्क से ही नहीं, बल्कि हृदय से भी संसार को समझने-जानने की कोशिशें करते हैं और अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करना सीखते हैं। सदियों से लोग जो कथा-कहानियाँ बनाते आए हैं, उनके बिंब विद्यार्थियों में हर समाज के लोगों की सृजन भावना का, उनकी आकांक्षाओं और आदर्शों का आभास दिलाते हैं।

अब बात करते हैं कहानी के बनने की।

आप किसी उत्सव में सम्मिलित हुए?

उत्सव देर रात तक चला। वापसी के लिए जिस वाहन की सुविधा मिली उसकी दशा-दिशा कुछ ऐसी थी कि आपको कई तरह की असुविधाएँ हुईं। एक तो रात ऊपर से घना कोहरा, आपका वाहन खराब हो जाता है। वाहन इस स्थिति में नहीं है कि अब वह आगे बढ़े। आप पैदल चलने की ठान लेते हैं। घर तक पहुँचते-पहुँचते और भी कुछ घटता है।

अगले दिन आप अपने मित्रों को आपबीती सुना रहे हैं। क्या आपको अपनी इस आपबीती में किसी कहानी के जन्मने की संभावनाएँ नज़र आती हैं?

हमारे इर्द-गिर्द और खुद हमारे साथ बहुत कुछ घटता रहता है। क्या इस प्रकार की घटना कहानी बन सकती है? सत्य तो यही है कि कहानी के मूल में कोई-न-कोई घटना

अवश्य छिपी होती है। दरअसल उस घटना के साथ मानवीय संवेदनाओं, अनुभवों के और कितने आयाम किस तरह से आ जुड़ते हैं, कहानी के बनने में यह कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं।

घटना के वातावरण का सजीव स्पंदन, साथियों का जीवंत संवेदन, उत्सुकता बनाए रखने वाले परस्पर संबंध सूत्र संकेत, समय, आगे-पीछे के अनुभव और स्मृतियाँ ये सभी सर्जना के ताने-बाने घटना को कहानी का आकार देने लगते हैं। हो सकता है कहानी बनते-बनते मूल घटना के मूल तत्व कहीं परोक्ष में चले जाएँ और जीवन के प्रति हमारी सोच, हमारा दर्शन, हमारी निजी विशेषताएँ कहीं अधिक मुखरित हो उठें। कहानी के लिए घटना की दृश्यमानता में हम अपनी अदृश्यता शामिल करते हैं। कभी-कभी यह भी होता है कि अपने संग घटी घटना के साथ-साथ दूसरों की घटनाएँ भी जुड़ने लगती हैं और इस तरह से अंतहीन कहानियों का सिलसिला चल पड़ता है। कहने के मायने तो यही हुए कि कहानी वह होती है जो कभी खत्म नहीं होती। हम उसे अपने तरीके से मोड़ सकते हैं, उसमें नए-नए पात्र जोड़कर एक नयी कहानी रच सकते हैं। *विक्रम-बेताल* और *पंचतंत्र* की कहानियाँ ऐसी ही हैं।

इस दुनिया में बहुत-सी कहानियाँ हैं, जितने लोग उतनी कहानियाँ। हर व्यक्ति की अपनी एक कहानी है और उसमें भी हर दिन कुछ-न-कुछ जुड़ता चला जाता है। कई बार घटना या पात्र की अपेक्षा अंचल या क्षेत्र विशेष की भंगिमाएँ ज़्यादा मुखर हो जाती हैं। आख्यान या कहानी के इस रूप को 'आँचलिक कहानी' की संज्ञा दी गई। फणीश्वरनाथ रेणु की अनेक रचनाएँ हमें इस दुनिया से सुंदर तरीके से रू-ब-रू कराती हैं।

क्या हम कहानी पढ़ाते समय बच्चों के मन में उठने वाले उपर्युक्त सूत्रों को पकड़ने की कोशिश करते हैं?

चलिए चंद्रधर शर्मा गुलेरी कृत एक बहुचर्चित कहानी *उसने कहा था* को पढ़ते हुए देखें— *उसने कहा था* — यह कहानी हमारे सामने एक विस्तृत फलक उपस्थित करती है, जिसमें पात्र, स्थितियाँ और घटनाएँ कहीं से भी कल्पना में गढ़े गए नहीं लगते हैं। इस कहानी में वातावरण बहुत ही महत्वपूर्ण है। लेखक ने कहानी की पृष्ठभूमि में वातावरण को बड़े ही सजीव ढंग से तथा उसकी संपूर्णता में उभारा है। समूची कहानी वातावरण के साथ अपने सारे रंगों-रूपों में जीवंत हो उठी है। कहानी का वातावरण चाहे अमृतसर के बंबू कार्ट वालों का घना और अतिव्यस्त मोहल्ला हो, चाहे सर्दी से ठिठुरती-काँपती जर्मनी की युद्धभूमि हो, समूचा वातावरण जीता-जागता हमारे सामने उपस्थित हो उठता है। वार्तालाप और घटनाओं के माध्यम से एक-एक करके कई दृश्य आँखों के सामने से गुज़रते चलते हैं। कभी-कभी तो लगने लगता है कि यह प्रेम के उत्कर्ष की कथा है तो कभी लगता है कि जीवन के उच्च आदर्शों से गुँथी कथा है और कभी लगता है कि कहानी इन दोनों में से कुछ भी नहीं, बल्कि आम जीवन की एक सहज-सी घटना का चित्र-भर है जो पाठकों के हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ता है।

कहानी का आरंभ बहुत ही आकर्षक है। लेखक किसी भी तरह के तामझाम का सहारा लिए बिना पाठकों को अमृतसर के बंबू कार्ट वालों के भीड़ भरे व्यस्त मोहल्ले में ले जाकर खड़ा कर देता है।

'बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबू कार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें।'

इस व्यस्त बाज़ार की एक दुकान पर दो बाल पात्र बहुत ही सहज भाव से पाठकों के सामने उभरते हैं। अब इसके बाद की कहानी इन दोनों के वार्तालाप के माध्यम से आगे बढ़ती है। "तेरी कुड़माई हो गई क्या?" लड़की से पूछना और "धत्" कहकर लड़की का दौड़ जाना कभी तो गुड़िया-गुड्डे के खेल-सा लगता है, कभी निश्छल प्रेम की अनुभूति से मन को सराबोर कर देता है।

लड़के को इस 'धत्' की उम्मीद हर बार ही रहती है, पर एक दिन लड़की का अलग से जवाब देना एक अलग तरह का ही मज़ा पैदा करता है,

"हाँ, हो गई, कल। देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ शालू।" लड़की यह कहकर भाग जाती है। लड़की पहले भी भागती थी 'धत्' कहकर और अब भी चली गई है, पर अब जो लड़के पर प्रतिक्रिया होती है वह महसूस करने की बात है। लेखक ने लड़के के हृदय पर पहुँचे आघात और मानसिक स्थिति का चित्रण-देखिए किस खूबसूरती के साथ किया है— 'लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा, सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।'

मन की बेचैनी और छटपटाहट का इससे सुंदर चित्रण और भला कहाँ मिल सकता है? देखिए, पात्र ने कुछ भी नहीं कहा पर उसकी मन:स्थिति उसकी बाह्य शारीरिक क्रियाओं के ज़रिये स्वत: ही उभरकर सामने आ रही है। लड़की की कुड़माई की बात सुनकर लड़के के मन पर पहुँची चोट, लड़की के प्रति उसके मन में उपजे निश्छल प्रेम की बानगी बिना किसी संवाद के ही उद्भूत हो रही है।

मन को पुलकित कर देने वाली तो कभी छटपटाहट से भरी अमृतसर की हर घटना के बाद के समय का संकेत सीधे युद्ध भूमि में जाकर मिलता है। 'तेरी कुड़माई हो गई क्या' जैसे कोमल संवाद की जगह ले ली अब सैनिकों के वार्तालाप ने। उसी के माध्यम से लेखक ने एक नए बिलकुल विपरीत भाव वाले वातावरण की सर्जना की है। यहाँ भी वातावरण की सृष्टि/रचना वर्णानात्मक शैली में न होकर संकेतात्मक शैली में हुई है। आँखों के सामने बिंब कुछ इस तरह से उभर रहे हैं कि मानो लेखनी नहीं कैमरे से सृजित किया चलचित्र सामने चल रहा है।

"राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गई हैं। लुधियाने से दस गुना जाड़ा और मेह और बर्फ़ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं।"—
"सूबेदार जी, सच है," लहना सिंह बोला—"पर करें क्या? हड्डियों में जाड़ा जो धँस गया है।"

युद्ध स्थल की खाइयों में ले जाकर पटकता नहीं है लेखक, बल्कि वहीं मानवीय मूल्यों का सूत्र पकड़ा देता है पाठकों के हाथ में, 'सिख तंबाकू नहीं पीते।'

अब कहानी में नाटकीय घटनाओं की शुरुआत होती है पर वह भी बड़ी सहजता के साथ। लपटन साहब के रूप में अफ़सर का प्रवेश, सूबेदार हजारा सिंह का अधिकांश सैनिकों को लेकर खाई से बाहर चले जाना। लपटन साहब द्वारा लहना सिंह को सिगरेट देना और लहना सिंह को सबकुछ समझने में तनिक भी देरी न करना। पाठकों का कौतूहल बढ़ता जा रहा है, साँस भी थम-सी रही है।

आक्रमण की घटना के बाद तूफ़ान जैसे थम-सा गया है— 'लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसे कि...'

कहानी कहने की तकनीक का उत्कर्ष हमें कहानी के अंतिम भाग में दिखाई देता है। लगता है कथा के कुछ सूत्र छूटे हुए हैं और नायक की मन:स्थिति के चित्रण से लेखक इन सूत्रों को जोड़ना चाह रहा है। अब फिर से भूत और वर्तमान दो तरह के बिंब उभरते हैं। "वजीरा सिंह, पानी पिला दे" लगता है लहना एक साथ दो स्थितियों में जी रहा है। अचेतन मन के माध्यम से चेतन जगत के सभी सूत्र जोड़ दिए हैं लेखक ने।

लहना पंजाब के गाँव में आम के पेड़ के नीचे है। उसकी चेतना के गहन तार उसकी अपनी भूमि से जुड़े हैं। कहानी का शिल्प इतनी कसावट के साथ उभारा गया है कि घटनाएँ कहीं भी तितर-बितर नहीं होतीं और उनकी नाटकीयता भी किसी तरह का अविश्वास पैदा नहीं करती।

कक्षा में कहानी से कुछ खेल

जो बात कविता के संदर्भ में सही है, वही बात कहानी के संदर्भ में भी सही है। यानी उद्देश्य तथा गतिविधि में तार्किक रिश्ता होना चाहिए। कहानी-शिक्षण के कुछ उद्देश्य इस प्रकार हो सकते हैं—

उद्देश्य— 1

मौखिक एवं लिखित रूप में वर्णन करने की क्षमता का विकास करना

उद्देश्य—2

कल्पनाशक्ति तथा तर्कशक्ति का विकास करना

उद्देश्य—3

पात्रों के ज़रिये कहानी में निहित सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक संदर्भों को समझने की क्षमता का विकास करना

कहानी के लिए दिए गए उद्देश्य—3 के लिए निम्नलिखित गतिविधि हो सकती है—

गतिविधि—1

विद्यार्थियों को कहानी सुनाई जाए। कहानी रिकॉर्ड की हुई भी हो सकती है। सुनाने के बाद उसके पात्रों, दृश्यों, संदर्भों पर चर्चा कीजिए। उसके बाद एक-एक करके कुछ विद्यार्थियों को मौखिक रूप से कहानी कहने के अवसर दें। जब कुछ विद्यार्थी कहानी कह चुके हों तब उनके कहानी कहने के तरीके, भाव-भंगिमा, आवाज़ का उपयोग, घटनाओं की क्रमबद्धता आदि पर कक्षा में चर्चा कीजिए। ध्यान रहे कि किसी कहानी में जिन विद्यार्थियों को कहानी कहने का अवसर मिला, अन्य कहानी में किन्हीं और को मौका मिलना चाहिए।

कहानी के लिए दिए गए उद्देश्य—1 के लिए निम्नलिखित गतिविधि हो सकती है—

गतिविधि— 2

वसंत भाग–1 (एन.सी.ई.आर.टी.) में एक कहानी है।

नादान दोस्त, इस कहानी पर गतिविधि—1 के अनुसार आगे बढ़ने के बाद विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता को विकसित करने के अवसर दिए जा सकते हैं।

विद्यार्थियों के सामने स्थिति— अगर माँ उनको पहले ही बता देती कि 'छूने से चिड़ियों के अंडे गंदे हो जाते हैं।' चिड़िया फिर उन्हें नहीं सेती? ऐसी स्थिति में कहानी को आगे बढ़ाने के लिए किन घटनाओं और दृश्यों की रचना करनी पड़ती? आदि। विद्यार्थियों के साथ मिलकर घटनाओं और दृश्यों की शृंखला की रचना इस प्रकार से करें कि वे किसी तार्किक तथा साहित्यिक अंजाम तक पहुँचें।

उद्देश्य—1 के लिए एक गतिविधि की रचना कीजिए तथा उसकी प्रभावशीलता का परीक्षण भी कीजिए।

गतिविधि— 3

कुछ लघु कहानियाँ या कहानियों के अंश प्रतिभागियों को पढ़ने के लिए दें और पूछें कि इसमें कहानी कहाँ है, जिसे आप कहानी का होना कह रहे हैं वह कहानी क्यों है? अध्यापक प्रशिक्षुओं से चर्चा करते हुए इन बिंदुओं तक पहुँचने की कोशिश करें—

- कहानी के इन कथातंतुओं की बुनावट कैसे होती है।
- पूरी कहानी में वह मुख्य बिंदु कौन-सा है जो उसे कहानी बनाता है।
- उस मुख्य बिंदु को कैसे फैलाव दिया गया है।

गतिविधि— 4

प्रतिभागियों को चार-पाँच समूहों में बाँट दें। उन्हें कहानी का एक प्लॉट या कुछ चित्रों की शृंखला दें और उसके आधार पर उन्हें कहानी को अपने ढंग से विकसित करने को कहें। कहानी तैयार हो जाने के बाद प्रत्येक समूह से किसी एक व्यक्ति को कहानी प्रस्तुत करने को कहें। इस दौरान शेष समूह के लोग कहानी के मुख्य बिंदुओं को लिख लें। दूसरे समूह की प्रस्तुति के दौरान भी यही प्रक्रिया अपनायी जाए। संबंधित व्यक्ति इस बिंदु को भी उजागर करें कि एक ही प्लॉट या चित्र शृंखला प्रत्येक व्यक्ति के मन में अलग भाव जगाती है। विकसित कहानी को आधार बनाकर लिखने की उनकी प्रक्रिया और कहानी को कहानी बनाने वाले तत्वों पर चर्चा करें। आपने क्या-क्या किया और क्यों किया। ऐसा करने से या ऐसा न करने से क्या फर्क पड़ता।

गतिविधि— 5

कहानी के विविध पक्षों पर उदाहरण सामने रखकर विस्तार से चर्चा करें। चर्चा के बिंदु निम्नलिखित हो सकते हैं—

- कहानी का आरंभ और अंत
- कहानी का शीर्षक
- कहानी की भाषा
- कहानी में संवाद
- कहानी का प्लॉट विकसित करने के तरीके
- कहानी की तकनीक (फ़्लैश बैक, बिंब, कल्पना, दृश्यों का चयन, नाटकीयता आदि)।

7.1.4 निबंध को पढ़ते हुए

यदि हिंदी का आधुनिक काल गद्य-युग है, तो उसका बहुत अधिक हिस्सा 'निबंध' और उससे मिलती-जुलती विधा 'लेख' ने घेर रखा है। आधुनिक युग में गद्य-साहित्य की जिन विधाओं का उद्भव-विकास हुआ है, उनमें 'निबंध' सर्वाधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ है। पश्चिम में 'निबंध' विधा जिस तरह ज्ञानोदय का वाहक बनी थी, उसी तरह आधुनिक काल के शुरुआती दौर में (भारतेंदु-युग और द्विवेदी-युग में) हिंदी-पट्टी में भी ज्ञानोदय, नवजागरण और उपनिवेशवाद से संघर्ष की चेतना का वाहक या औज़ार बनकर उभरा था हिंदी का निबंध-साहित्य। जन-मन की जड़ता पर प्रहार और तार्किक सोच के विकास के साथ उसे सामाजिक-राजनैतिक रूप से संगठित करने में उसने अहम भूमिका निभाई। हिंदी गद्य के विकास और परिष्कार में भी 'निबंध' विधा की ऐतिहासिक भूमिका रही है। तब वस्तुत: निबंध-विधा के विकास, प्रतिष्ठा व प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का सीधा योगदान था। उस समय, पत्रकारिता और निबंध का आज जितना भेद भी नहीं था, जिसका प्रमाण कई पत्रकारों का श्रेष्ठ निबंधकारों के रूप में उभार है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि इस दिशा में मूर्द्धन्य नाम हैं।

'निबंध' एक ऐसा माध्यम है जो अपने रचनाकार को एक निर्विघ्न, उन्मुक्त व प्रशस्त विचार और भाव को आधार देता है। जीवन के हरेक क्षेत्र में रहने वाले पाठक अपने अपेक्षित विचार-दर्शन को उसमें प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि निबंध का विषय-विस्तार नाना क्षेत्रों को अपने में समेट लेता है। फिर, हमारी धार्मिक-सांस्कृतिक, सामाजिक-राजनैतिक, मानसिक आदि विविधरूप जीवन-स्थितियों के साथ जैसा प्रत्यक्ष संबंध निबंध का है, वैसा साहित्य के अन्य रूपों का नहीं। मनुष्य के भावनात्मक और बौद्धिक उन्नयन में निबंध का योगदान अविस्मरणीय है। वैसे तो पुराने संस्कृत-वाङ्मय में भी 'निबंध' नामक विधा की प्रचुर उपस्थिति रही है, परंतु आधुनिक 'निबंध' से उसका स्पष्ट अलगाव भी है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, नये युग में जिस नवीन ढंग से निबंधों का प्रचलन हुआ है, वे 'तर्कमूलक' की अपेक्षा 'व्यक्तिगत' अधिक हैं। वे व्यक्ति की स्वाधीन चिंता की उपज हैं।

भारतीय परंपरा गद्य को कवियों की कसौटी कहती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विचार है, 'यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है।' इस विधा में गद्य का निजी रूप दिखाई पड़ता है। निबंध का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इतिहास, पुरातत्व, दर्शन, विज्ञान, आलोचना, जीवन-मीमांसा किसी भी विषय पर निबंध लेखन किया जा सकता है। प्रत्येक निबंध लेखक की एक विशिष्ट शैली होती है। हिंदी निबंध लेखन

पश्चिम के संपर्क में विशेषतौर पर विकसित हुआ। तकरीबन सवा सौ वर्षों के इतिहास में निबंध ने अनेक बेहतरीन रचनाकारों से अपने अभिव्यक्ति संसार का विस्तार किया। कुछ प्रमुख नाम हैं— प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, माधवप्रसाद मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुंद गुप्त, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पूर्णसिंह, गोपालराम गहमरी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास, बाबू गुलाब राय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, श्री वियोगी हरि, पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, सियारामशरण गुप्त, हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, नामवर सिंह, हरिशंकर परसाई, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय आदि। मौजूदा दौर में अनेक ऐसे निबंध लिखे जा रहे हैं, जो समाजशास्त्र, राजनीति, संस्कृति, विज्ञान-प्रौद्योगिकी संसार के लोग रच रहे हैं। ये निबंध की विस्तृत दुनिया के नए संदर्भ हैं। समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे, वैज्ञानिक जयंत नार्लीकर, पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र, राजनीतिज्ञ किशन पटनायक, गणितज्ञ गुणाकर मुले आदि ऐसे अनेक नाम हैं।

निबंध अध्यापन के लिए ज़रूरी है कि दो बातों की खासतौर पर पड़ताल की जाए। एक यह कि निबंधकार की कौन-सी निजी विशेषताएँ निबंध में प्रकट हो रही हैं। इसे हम वैयक्तिकता भी कह सकते हैं। दूसरी बात यह कि निबंध की विषय-वस्तु से संबंधित जानकारी हासिल की जाए। यह जानकारी पाठ की समझ बढ़ाने में सहायक होगी।

इन विशेषताओं के आलोक में महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंध 'स्त्री-शिक्षा के विरोधी कुतर्कों का खंडन' पर विचार किया जाए। खड़ी बोली हिंदी के आरंभिक दौर में जिन उन्नायकों ने भाषा की प्रकृति का निर्धारण किया, उनमें महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम सर्वोपरि है। द्विवेदी जी के लेखन को इसलिए भी याद किया जाता है कि उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से नवजागरणकालीन मूल्यों को मज़बूत संबल प्रदान किया। उदाहरण के लिए इन्होंने इस निबंध में इस रूढ़ मान्यता को खारिज किया है कि स्त्रियाँ शिक्षा की हकदार नहीं होतीं। अध्यापन करते समय इन तथ्यों के आलोक में निबंध की दुनिया से परिचय विकसित किया जा सकता है। द्विवेदी जी के लेखन में प्रयत्नपूर्वक भावुकता से बचने की कोशिश होती है। इस निबंध में भी उनकी यह विशेषता नज़र आती है। उसी तरह वे तर्क के आलोक में अपनी बात को मुखर ढंग से प्रकट करते हैं। निबंध के साक्ष्य पर इसे बखूबी समझा जा सकता है।

एक अन्य निबंध-रचना को सामने रखकर बात करते हैं, वह है आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का बहुचर्चित निबंध— *शिरीष के फूल*। कक्षा में इस निबंध के शिक्षण के दौरान सबसे पहले इसका एक आदर्श वाचन विद्यार्थियों एवं अध्यापक-अध्यापिका के सम्मिलित प्रयत्न से होना चाहिए। फिर विद्यार्थियों को रचनाकार के जीवन, व्यक्तित्व-निर्माण, कृतित्व आदि के बारे में संक्षेप में बताया जा सकता है। निबंध की ओर मुखातिब होते हुए सबसे पहले यह बताया जाना चाहिए कि यह आचार्य द्विवेदी के निबंध-संग्रह *कल्पलता*

से गृहीत है। फिर धीरे-धीरे निबंध के आद्योपांत गहन वाचन का रास्ता पकड़ते हुए अग्रसर हुआ जा सकता है, परंतु उस दौरान बीच-बीच में भाव व भाषा-प्रयोग के खास व्याख्येय स्थलों पर ठहरकर विचार-विश्लेषण भी करते रहना उपयोगी होगा।

निबंध की समूची पढ़ाई के बाद यह अपेक्षा की जाती है कि विद्यार्थियों के अंतस में इसका मर्म समाविष्ट होगा। उसका रूप कुछ इस तरह से भी हो सकता है—

इसमें लेखक आँधी, लू और गरमी की प्रचण्डता में भी अवधूत की तरह अविचल होकर कोमल पुष्पों का सौंदर्य बिखेर रहे शिरीष के माध्यम से मनुष्य की अजेय जिजीविषा और तुमुल कोलाहल-कलह के बीच धैर्यपूर्वक, लोक के साथ चिंतारत, कर्त्तव्यशील बने रहने को महान मानवीय मूल्य के रूप में स्थापित करता है। ऐसी ही भावधारा में बहते हुए उसे देह-बल के ऊपर आत्मबल का महत्व सिद्ध करने वाली इतिहास-विभूति गांधी जी की याद हो आती है, तो वह गांधीवादी मूल्यों के अभाव की पीड़ा से कसमसा उठता है। निबंध की शुरुआत में लेखक शिरीष पुष्प की कोमल सुंदरता के जाल बुनता है, फिर उसे भेदकर उसके इतिहास में और फिर उसके ज़रिये मध्यकाल के सांस्कृतिक इतिहास में पैठता है, फिर तत्कालीन जीवन व सामंती वैभव-विलास को सावधानी से उकेरते हुए उसका खोखलापन भी उजागर करता है। लेखक शिरीष को नज़र-अंदाज़ किए जाने की साहित्यिक घटना से आहत है और इसी में उसे सच्चे कवि का तत्व-दर्शन भी होता है। उसके अनुसार, योगी की अनासक्त शून्यता और प्रेमी की सरस पूर्णता एकसाथ उपलब्ध होना सत्कवि होने की एकमात्र शर्त है। ऐसा कवि ही समस्त प्राकृतिक और मानवीय वैभव में रमकर भी चुकता नहीं और निरंतर आगे बढ़ते जाने की प्रेरणा देता है। शिरीष के पुराने फलों की अधिकार-लिप्सु खड़खड़ाहट और नये पत्तों-फलों द्वारा उन्हें धकियाकर बाहर निकालने में लेखक साहित्य, समाज व राजनीति में पुरानी और नयी पीढ़ी के द्वंद को संकेतित करता है तथा स्पष्ट रूप से पुरानी पीढ़ी और हम सब में नयेपन के स्वागत का साहस देखना चाहता है। इस निबंध का शिल्प इसी में चर्चित इक्षुदंड की तरह है— सांस्कृतिक संदर्भों व शब्दावली के भड़कीले खोल के भीतर सहज भावधारा के मधुरस से युक्त। यह हर तरह से आस्वाद्य और प्रयोजनीय है तथा इस प्रकार लेखक के प्रतिनिधि निबंधों में से एक है।

शिक्षक-शिक्षिकाओं को विद्यार्थियों के साथ अभ्यास, गतिविधियों व परियोजना कार्य के माध्यम से ऐसी अंत:क्रिया करनी होती है कि निबंध के भाव और कला पक्ष की बारीकियाँ वे हृदयंगम कर लें

गुलाब राय ने अपनी बहुचर्चित रचना *काव्य के रूप* में कहा है— "निबंध उस गद्य-रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और संबद्धता के साथ किया गया हो।"

तथा प्रस्तुत निबंध को लेकर अपने घर, आस-पास और देश-दुनिया में विचरण कर सकें— इन सबका निबंध के साथ एक सार्थक संवाद कायम कर सकें, जो साहित्य का बड़ा प्रयोजन है। इससे यदि संभव हो तो अपने या मानव-सामान्य के लिए एक प्रयोजनीय जीवन-दर्शन (या, पाठ से क्या सीख मिली? जैसी बात) भी निकाल सकें। इसके साथ, वे लेखक के अन्य निबंधों से इसकी तुलना करने की ओर उन्मुख हों— यह भी उद्देश्य होना चाहिए, ताकि उनमें 'तुलनात्मक साहित्य' जैसी चीज़ और आलोचना की क्षमता सुगबुगाए। तुलना की भूमि, भाव और भाषा दोनों की हो सकती है। उदाहरणस्वरूप, द्विवेदी जी का एक और चर्चित निबंध है— *अशोक के फूल*, उसमें भी अशोक के फूल को भुला दिये जाने की सांस्कृतिक घटना उन्हें उन्मथित करके रख देती है, जिस तरह यहाँ शिरीष के फूल की अनदेखी किए जाने की साहित्यिक घटना उन्हें आहत करके रख देती है। इन सबके साथ, विद्यार्थियों को लेखक के समूचे निबंध-साहित्य की एक सामान्य विशेषता का बोध भी अपेक्षित है। वह कुछ इस तरह से संबंधी हो सकता है—

द्विवेदी जी का निबंध-साहित्य इस अर्थ में बड़े महत्व का है कि साहित्य-दर्शन तथा समाज-व्यवस्था संबंधी उनकी कई मौलिक उद्भावनाएँ मूलत: निबंधों में ही मिलती हैं, पर यह विचार-सामग्री पांडित्य के बोझ से आक्रांत होने की जगह उसके बोध से अभिषिक्त है। अपने लेखन द्वारा निबंध-विधा को सृजनात्मक साहित्य की कोटि में ला देने वाले द्विवेदी जी के ये निबंध व्यक्तित्व-व्यंजना और आत्मपरक शैली से युक्त हैं। ('आरोह' भाग–2/ कक्षा बारहवीं 'आधार' की हिंदी पाठ्यपुस्तक का पाठ-परिचय) निबंध में आये ऐसे शब्दों (जैसे— 'विदग्ध') व मुहावरों-लोकोक्तियों (जैसे— 'दस दिन फूले और फिर खंखड़') या भाषा के लक्षणा-व्यंजनामूलक प्रयोगों (जो आमतौर पर कम प्रचलित हैं या विद्यार्थियों को कठिन लग रहे हैं) का अर्थ-बोध कराना अथवा सांस्कृतिक संदर्भों का तात्पर्य-बोध कराना भी शिक्षण का ही एक अंग है, यह बोध निबंध के संदर्भ में ही कराना उचित होगा, अन्यथा अर्थ की जगह अनर्थ की आशंका है। 'विदग्ध' शब्द को संदर्भ से काटकर देखने पर अर्थ निकलेगा— 'वि+दग्ध', यानी जो विशेष रूप से जला हुआ हो, बहुत ज़्यादा कल्पना करेंगे तो अर्थ लगेगा-विरही, पर ये अर्थ निबंध में प्रयोग की जगह देखने पर सही नहीं लगेंगे— 'कालिदास वज़न ठीक रख सकते थे, क्योंकि वे अनासक्त योगी की स्थिर-प्रज्ञता और 'विदग्ध' प्रेमी का हृदय पा चुके थे।' — प्रयोग देखने से पता चलेगा कि 'विदग्ध' बहुत सकारात्मक अर्थ में गंभीर-मर्मज्ञ प्रेमी के विशेषण के तौर पर आया है, इसलिए पहले किये गए अर्थ को ही लक्ष्यार्थ में और आगे बढ़ाने पर सही अर्थ निकलकर आएगा। वह अर्थ है— 'तपा-तपाया'। इसी तरह, व्याकरण या भाषा-संरचना से संबंध रखने वाले कुछ विलक्षण प्रयोग यदि निबंध में आये हों, तो उन्हें भी संदर्भ के साथ विश्लेषित करने की आवश्यकता होगी।

आपने पढ़ा होगा कि किसी विषय पर निबंध लिखने में वैचारिक गठन की माँग केंद्रीय होती है। हमसे हर कोई विभिन्न विषयों पर घंटों बातें करते हैं, लेकिन उन्हीं विषयों पर लिखने का निमंत्रण मिले तो मुश्किल में पड़ा महसूस करते हैं। इसके अनेक कारणों में से एक कारण है— अभ्यास की कमी। जिन विषयों पर हम अकेले में या/और समूह में चर्चा करते हैं यदि उन पर लिखने का अभ्यास किया जाए और उसका वैचारिक गठन तथा सहजता के पैमाने पर स्वयं भी मूल्यांकन किया जाए तो निबंध लेखन की दिशा में बढ़ा जा सकता है।

निबंध-शिक्षण के कुछ उद्देश्य इस प्रकार हो सकते हैं—

उद्देश्य— 1

निबंध में प्रस्तावित विचारों के तार्किक आधारों को समझना

उद्देश्य— 2

निबंध में प्रस्तावित विचारों की समीक्षा करने की समझ का विकास

उद्देश्य— 3

निबंध लेखन की क्षमता का विकास

आइए, पहले उद्देश्य—1 के संगत एक गतिविधि पर विचार करें—

गतिविधि— 1

आइए, वसंत भाग–3 (एन.सी.ई.आर.टी.) में शामिल निबंध 'क्या निराश हुआ जाए' पर विचार करते हैं। उद्देश्य— 1 निबंध में शामिल विचारों के तार्किक आधारों को समझने की क्षमता के विकास पर केंद्रित है। पढ़-सुनकर निबंध से परिचय होने के बाद निबंध में कही गई बातों पर विद्यार्थियों की राय को समझने की कोशिश कीजिए। उनकी राय को संकेत बिंदुओं के रूप में श्यामपट्ट पर लिखा जाना मददगार होगा। उनके मतों में निहित विरोधाभासों तथा अंतरों को पकड़कर कक्षा में चर्चा करवाई जाए। शिक्षक को चाहिए कि निबंध में दर्ज पंक्तियों को उद्धृत कर चर्चा को नियंत्रण में रखें। विद्यार्थियों द्वारा व्यक्त की जा रही राय के पक्ष में उनसे निबंध की संगत पंक्तियों को उद्धृत करने की माँग की जाए।

गतिविधि— 2

उद्देश्य— 1 की दिशा में बढ़ने के लिए एक और प्रक्रिया को अपनाया जा सकता है। विद्यार्थियों को समूहों में बाँट दिया जाए। समूहों की संख्या विद्यार्थियों की संख्या पर निर्भर करती है। समूहों को कहा जाए कि वे दिए गए निबंध के बारे में 10–10 सवाल बनाएँ। जैसे— भौतिक वस्तुओं की उपेक्षा क्यों नहीं की जा सकती?, कायदे-कानूनों का लाभ

गरीबों को क्यों नहीं मिल पाया?, 'धर्म को धोखा नहीं दिया जा सकता, कानून को दिया जा सकता है।' इसके पक्ष या विपक्ष में तर्क दीजिए आदि। जब दोनों समूह सवाल बना लें तब यह व्यवस्था की जाए कि एक समूह दूसरे समूह से एक सवाल पूछेगा। दूसरा समूह सोच-विचार करके उसका जवाब देगा। ज़रूरत पड़ने पर शिक्षक/शिक्षिका दिए गए जवाब में संशोधन या विस्तार कर सकते/सकती हैं, फिर दूसरा समूह पहले समूह से प्रश्न पूछेगा। यह सिलसिला 10–10 सवालों के पूरा होने पर सबको धन्यवाद देने तथा शिक्षक/शिक्षिका की सार्थक टिप्पणी के साथ समाप्त होगा।

उद्देश्य— 2 तथा उद्देश्य— 3 के लिए एक-एक गतिविधि बनाकर उनकी उपयोगिता की जाँच कीजिए।

किसी निबंध के कक्षा-शिक्षण के दौरान इन बातों की खासतौर पर पड़ताल की जानी चाहिए—

निबंध की विषय-वस्तु से संबंधित — जैसे, आलोच्य निबंध का कथ्य क्या है तथा उसे किस तरीके से, किस क्रम में प्रस्तुत किया गया है?

निबंधकार के व्यक्तित्व से संबंधित — जैसे, उसकी कौन सी निजी विशेषताएँ (वैयक्तिकता) निबंध में प्रकट हो रही हैं? ये विशेषताएँ विषय के प्रति रचनाकार के निजी दृष्टिकोण, संवेदना, विचार आदि की भी हो सकती हैं, भाषा-शैली व शिल्प की भी।

7.1.5 रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी और निबंध को पढ़ना-पढ़ाना

अभिव्यक्ति के विविध रूप होते हैं। भाषा-साहित्य अध्यापन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह होता है कि विद्यार्थी समुदाय को विभिन्न भंगिमा शैलियों से रू-ब-रू कराया जाए। जिन विद्यार्थियों को इस पाठ्यक्रम के आलोक में संबोधित करना है, वे किशोर-किशोरी हैं। इस उम्र में रचनात्मकता और परिवेश को समझने की ऊर्जावान ललक होती है। यह ज़रूरी है कि हम विभिन्न गद्य रूपों को अधिगम के इस पहलू के आलोक में समझें। इसके अतिरिक्त विधा की समझ और उसके संक्षिप्त परिदृश्य को समझना, विश्लेषित करना भी ज़रूरी है। विभिन्न गद्य विधाओं के अधिगम की अलग-अलग विधियाँ होती हैं, उदाहरण के लिए कहानी के अधिगम से रेखाचित्र का अधिगम अलग होता है, इसे एक संवेदनशील अध्यापन संसार बखूबी समझता है।

विद्यार्थियों के रोज़मर्रा के परिवेश में अनेक ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जिनका उनके मन पर गहरा असर पड़ता है। कई बार वे इसे अपने अंदाज़ में बयाँ करना चाहते हैं। ऐसा संभव है कि उन्हें इस बारीकी का अहसास न हो कि वे जो कह रहे हैं वह किस गद्य विधा

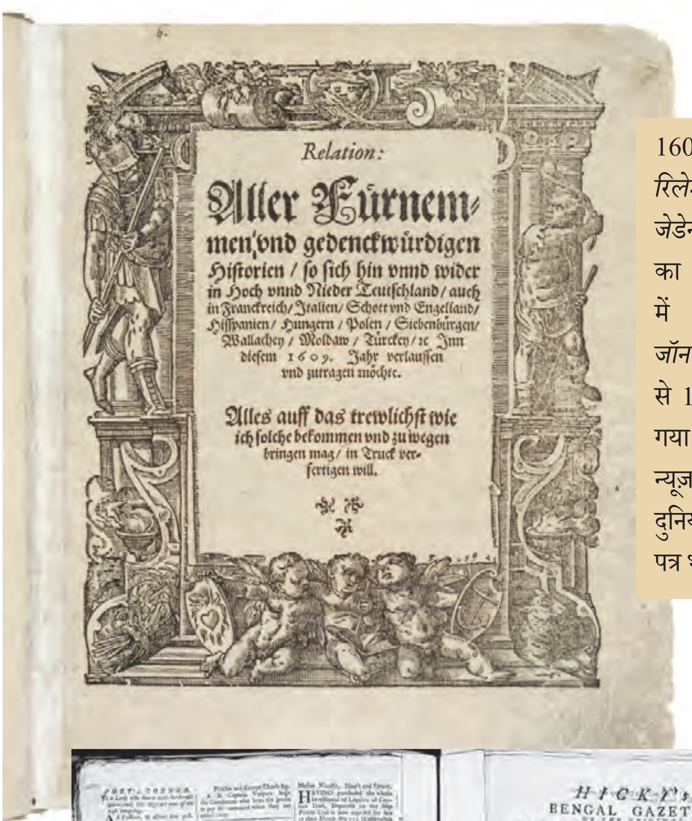

Relation:
Aller Fürnemmen vnd gedenckwürdigen Historien / so sich hin vnnd wider in Hoch vnnd Nieder Teutschland / auch in Franckreich / Italien / Schott vnd Engelland / Hispanien / Hungern / Polen / Siebenbürgen / Wallachey / Moldaw / Türckey / ꝛc. Inn diesem 1609. Jahr verlauffen vnd zutragen möchte.
Alles auff das trewlichst wie ich solche bekommen vnd zuwegen bringen mag / in Truck verfertigen will.

1609 में प्रकाशित, *रिलेशन एलिर फर्नमेन एंड जेडेन वर्डियन हिस्टोरियन* का मुखपृष्ठ, जर्मन भाषा में प्रकाशित यह पत्र *जॉन कार्लोस* द्वारा स्ट्रॉसबर्ग से 1605 में प्रकाशित किया गया। वर्ल्ड एशोसिएशन ऑफ़ न्यूज़पेपर द्वारा इस पत्र को दुनिया का ‘पहला’ समाचार पत्र भी माना जाता है।

HICKY'S
BENGAL GAZETTE;
OR THE ORIGINAL
Calcutta General Advertiser.

जेम्स ऑग्स्टस हिक्की द्वारा प्रकाशित, *बंगाल गजट* समाचार पत्र अंग्रेज़ी भाषा का पत्र था, जो कि तब कलकत्ता (अब कोलकाता) भारत से प्रकाशित किया जाता था। यह सन् 1780 में प्रकाशित भारत का प्रथम समाचार पत्र था। यह पत्र दो वर्ष तक प्रकाशित होने के बाद बंद हो गया।

का रूप है। वैसे तो उनके पास अपनी बात कहने का एक तरीका होता है, पर कई बार उन्हें इसका अफ़सोस भी होता है कि काश वे अपनी बात और बेहतर तरीके से कह पाते। इसी तरह अनेक समसामयिक घटनाएँ, जिनसे वे सीधेतौर पर प्रभावित होते हैं, उन्हें कहने, विश्लेषित करने की प्रभावशाली भाषा और शैली को वे रच/बना सकें ऐसी सामर्थ्य उन्हें हासिल हो, यह भी ज्ञानार्जन का हिस्सा है। ऐसे में विभिन्न कथन भंगिमाओं से संपन्न गद्य संसार उनकी स्मृति और अधिगम संसार का हिस्सा बने यह ज़रूरी है, आइए इन बातों के आलोक में हम गद्य की विभिन्न विधाओं से रू-ब-रू हों।

रिपोर्ताज और रेखाचित्र आधुनिक गद्य की चर्चित विधाएँ हैं। इन विधाओं को पढ़ाते समय सबसे पहले यह बताने की ज़रूरत है कि इन विधाओं का स्वरूप क्या है तथा अपनी किन विशेषताओं के कारण ये अन्य समरूप विधाओं से अलग हैं। उदाहरण के लिए यह जानना ज़रूरी है कि रिपोर्ताज, रिपोर्ट से कैसे अलग है? या रेखाचित्र और संस्मरण में किन बिंदुओं के आधार पर फ़र्क किया जा सकता है। रचना की बुनियादी विशेषता होती है संवाद की ललक और कथन भंगिमा की निजता, लिहाज़ा यह बताना भी ज़रूरी होता है कि कैसे कोई रचना उसी विधा की अन्य रचनाओं से अलग है या उस रचनाकार की कथन भंगिमा की निजी विशिष्टताएँ क्या हैं। अब सवाल यह है कि रचना पाठ की भूमिका कैसे बने। वैसे तो हर अध्यापक की भूमिका निर्माण की अलग-अलग प्रक्रियाएँ होती हैं, लेकिन कुछ सामान्य बातें हैं, जिनका उल्लेख किया जा सकता है। मसलन— किसी निजी या परिचित सामाजिक घटना से रचना के रिश्ते के साथ पाठ की पूर्वपीठिका तैयार की जा सकती है। उसी तरह किसी अन्य विधा में रचित समान प्रसंगों से भी बात की शुरुआत की जा सकती है। जब रचना से परिचय बन जाए तब उसमें निहित किसी मार्मिक प्रसंग का उल्लेख किया जा सकता है।

उल्लिखित प्रसंगों के बाद का क्रम है विधागत विशिष्टताओं का विश्लेषण। पहले हम रिपोर्ताज की बात करें। सवाल यह है कि रिपोर्ताज क्या है? आइए, इसे समझें। किसी घटना को संवेदनशील सजीवता के साथ, इस तरह प्रस्तुत किया जाए कि वह अखबारी समाचार की निर्जीव तटस्थता से आगे बढ़कर मनुष्य की समग्र चिंताओं और उसके सौंदर्यबोध को प्रकट करे, तब उसे 'रिपोर्ताज' कहते हैं। हिंदी साहित्यकोश, भाग–2 के अनुसार, 'रिपोर्ताज, फ्रांसीसी भाषा का शब्द है और अंग्रेज़ी शब्द रिपोर्ट से इसका गहरा संबंध है। 'रिपोर्ट' किसी घटना के यथातथ्य साध्य वर्णन को कहते हैं। रिपोर्ट सामान्यत: समाचारपत्र के लिए लिखी जाती है और उसमें साहित्यिकता नहीं होती। रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को 'रिपोर्ताज' कहते हैं। अकसर रिपोर्ताज की चर्चा करते समय अखबारी समाचार से उसके अंतर को स्पष्ट किया जाता है। रिपोर्ट या रपट में जहाँ सूचना संयोजन और तटस्थ अभिव्यक्ति का संकलन महत्वपूर्ण है, वहीं रिपोर्ताज में सूचना

संयोजन से अधिक समग्र मनुष्य की तलाश महत्वपूर्ण है और तटस्थ अभिव्यक्ति की जगह संवेदनशीलता का पुट उसे आत्मीय पाठ की विशेषता प्रदान करता है। हिंदी के प्रमुख रिपोर्ताज लेखकों में रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे, अमृतराय, धर्मवीर भारती और फणीश्वरनाथ रेणु सरीखे नाम महत्वपूर्ण हैं।

ऊपर लिखी विशेषताओं के आधार पर नौवीं कक्षा की पुस्तक 'क्षितिज' भाग–1 में शामिल एक रिपोर्ताज *ल्हासा की ओर* को देखें। हम जानते हैं कि इस यात्रा वृत्तांत में राहुल सांकृत्यायन ने उस दुर्दम्य यात्रा का वर्णन किया है, जिसमें बरास्ते नेपाल वे भिखमंगे के वेश में तिब्बत गये थे। उस समय भारतीयों का तिब्बत में प्रवेश वर्जित था। इस यात्रा का उद्देश्य था दुर्लभ बौद्ध रचनाओं को तिब्बत से प्राप्त करना। किसी पर्वतीय स्थल की सुंदरता या रमणीयता का वर्णन करने के साथ ही उन इलाकों की मुश्किलों और उन स्थितियों में जीवनयापन करने वालों की दुर्दम्य जीवनीशीलता का उल्लेख करने के बाद हम उन समान बिंदुओं के साथ साहचर्य स्थापित कर सकते हैं जो इस पाठ में संयोजित हैं। उदाहरण के लिए , पाठ का यह अंश, 'अब हमें सबसे विकट डाँडा थोड़गिला पार करना था। डाँडे तिब्बत में सबसे खतरे की जगहें हैं। सोलह-सत्रह हज़ार फ़ीट की ऊँचाई होने के कारण उनके दोनों तरफ़ मीलों तक कोई गाँव-गिराँव नहीं होते। नदियों के मोड़ और पहाड़ों के कोनों के कारण बहुत दूर तक आदमी को देखा नहीं जा सकता। डाकुओं के लिए यही सबसे अच्छी जगह है।' रिपोर्ताज की एक विशेषता यह भी होती है कि विवरणों को संवेदनशीलता से ग्रहण किया जाए। प्रस्तुत पाठ में भी ऐसे अनेक स्थल हैं, मसलन वहाँ के लोगों की जीवन शैली। प्रस्तुत पाठ में यात्रा वृत्तांत की संजीदगी भी है, फिर अध्याय का समग्र पाठ अपेक्षित होगा। पाठ से साहचर्य स्थापित करने का एक तरीका यह भी हो सकता है कि मौजूद विद्यार्थियों को पाठ में शामिल किया जाए। शामिल करने का एक तरीका नीचे लिखी पंक्तियों से समझा जा सकता है।

—इस यात्रा-विवरण से गुज़रने के बाद हम यह बखूबी समझते हैं कि कोई यात्रा महज़ आना-जाना नहीं होती, बल्कि छोटे-से-छोटे विवरण/घटनाएँ उस यात्रा में दर्ज करने की संवेदनशीलता भी होती है। यात्रा वृत्तांत जैसी विधा की विशेषताएँ विद्यार्थी की भाषा और संवेदना का हिस्सा बन सकें, यह यात्रा-विवरण शिक्षण का एक उद्देश्य होता है।

'रेखाचित्र' भी गद्य साहित्य की आधुनिक विधा है। यानी रेखाचित्र का जन्म और विकास कहानियों, उपन्यासों के बाद हुआ। प्राय: रेखाचित्र की बात करते हुए लगभग समान गद्यविधा 'संस्मरण' का भी नाम लिया जाता है। लिहाज़ा यह ज़रूरी है कि इन विधाओं की प्रकृति स्पष्ट करने के साथ ही इनके बीच मौजूद सूक्ष्म अंतरों पर भी एक नज़र डाली जाए। 'रेखाचित्र' को अंग्रेज़ी के 'स्केच' के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाता है।

रेखाओं और रंगों की बहुलता को महत्व न देकर यदि कोई चित्रकार इनी-गिनी रेखाओं के माध्यम से एक सार्थक रूप गढ़ ले, तब उसे 'स्केच' कहते हैं। उसी तरह रेखाचित्र लेखक कम से कम शब्दों के माध्यम से किसी व्यक्ति, वस्तु या दृश्य का चित्रांकन कर देता है। संस्मरण में 'स्मृति' की केंद्रीय भूमिका होती है। यानी जहाँ रेखाचित्र 'व्यक्ति या देशकाल' को महत्व देता है, वहीं संस्मरण 'स्मृति' को। यह समझना भी ज़रूरी है कि दोनों की विशेषताएँ एक-दूसरे में नज़र आ सकतीं हैं। पर हम पार्थक्य के लिए यह देखेंगे कि रचना में केंद्रीयता किसे हासिल हुई है। अंतर करते समय हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रेखाचित्र किसी ऐसे पात्र पर आधारित होता है, जो इतिहास प्रसिद्ध नहीं होता, यानी रेखाचित्र में किसी पशु, पक्षी या साधारण मनुष्य का वर्णन होता है। जबकि संस्मरण किसी प्रसिद्ध व्यक्ति या विषय पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए महादेवी वर्मा के 'गौरा' 'गाय' या 'घीसू' तथा परिवार पर लिखे रेखाचित्र और 'निराला', सुभद्रा कुमारी चौहान पर लिखे संस्मरण को हम याद कर सकते हैं। कुछ प्रमुख रेखाचित्र रचनाकारों के रूप में हम रामवृक्ष बेनीपुरी, बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, सआदत हसन मंटो, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर को याद कर सकते हैं। इन विधाओं के अंतर्गत शामिल रचनाओं पर अध्यापन के समय यह ध्यान रखने की ज़रूरत है कि हम विधाओं की विशेषताओं को पाठ के मद्देनज़र उद्घाटित करें। उसी तरह समरूप विधाओं में अंतर बताना भी ज़रूरी है।

रचना से साहचर्य स्थापित करने के कई रास्ते हो सकते हैं। मसलन आस-पास के परिवेश में घटी घटना के संवेदनशील उल्लेख से अपनी बात की तार्किकता साबित की जा सकती है। उसी तरह समाचार-पत्र से भी कोई साहचर्य ढूँढा जा सकता है। जब रचना की पीठिका बन जाए, तब संबंधित रचनाकार की विषय से संबंधित कोई विशेषता बताई जा सकती है, फिर रचना की दुनिया में प्रवेश होना न केवल सहज, बल्कि अपनेपन के गाढ़े भाव से भरा भी हो जाता है। उदाहरण के लिए, 'क्षितिज' भाग–2 में शामिल रेखाचित्र 'बालगोबिन भगत' को देख सकते हैं। इस पाठ में एक सामान्य कबीरपंथी गृहस्थ बालगोबिन की उन असाधारण विशेषताओं का वर्णन किया गया है, जिनके चलते उसकी मौजूदगी को लोग भगत की मौजूदगी के रूप में देखने लगे। रेखाचित्र की आधारभूत विशेषता दृश्य का अंकन होता है, इस लिहाज़ से निम्नांकित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं, 'बालगोबिन भगत मँझोले कद के गोरे-चिट्टे आदमी थे। साठ के ऊपर के ही होंगे। बाल पक गये थे। लंबी दाढ़ी या जटाजूट तो नहीं रखते थे, किंतु हमेशा उनका चेहरा सफ़ेद बालों से ही जगमग किये रहता। कपड़े बिलकुल कम पहनते। कमर में एक लंगोटी-मात्र और सिर में कबीरपंथियों की-सी कनफटी टोपी। जब जाड़ा आता, एक काली कमली ऊपर से ओढ़े रहते। मस्तक पर हमेशा चमकता हुआ रामानंदी चंदन, जो नाक के एक छोर से ही, औरतों के टीके की तरह, शुरू होता। गले में तुलसी की जड़ों की एक बेडौल माला बाँधे रहते।'

यह रचना जीवन और धर्म के हमारे प्रचलित रिश्ते को अलग आयाम से देखती है। रचना अध्यापन करते समय हमें उन तत्वों की भी खोज करनी चाहिए कि जो उस रचना की विशिष्टताएँ होती हैं और जिनके बल पर रचनाओं की भीड़ में वह अपनी अलग पहचान बना लेती हैं—रेखाचित्र किसी विद्यार्थी की स्मृतियों में अनेक ऐसी आदतों/भाषा अनुभवों को जोड़ता है, जिनसे परिवेश को अलग तरीके से देखने/कहने की समझ का विस्तार होता है। यह संभव है कि किसी रेखाचित्र के अध्ययन के बाद परिवेश में शामिल साधारण चरित्रों की असाधारण विशेषताओं को बेहतर तरीके से समझने का अवसर मिले। इसे 'बालगोबिन भगत' पाठ की यात्रा के माध्यम से हमने अच्छी तरह समझा। पाठ के आरंभ में लिखी भूमिका का विश्लेषण, रचनाकार और रचना की आधारभूत विशेषताओं पर समझ बनाने में हमारी मदद कर सकता है। इस संदर्भ में पुस्तकालय की भी सहायता ली जा सकती है।

संस्मरणों में स्मृति की प्रधानता की बात पहले ही की जा चुकी है। साहित्यकोश, भाग–1 के मुताबिक 'संस्मरण लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है।' उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ भी रहती हैं। इस दृष्टि से शैली में वह निबंधकार के समीप है।' ज़ाहिर-सी बात है संस्मरण लेखक अपनी रुचि के मुताबिक चुने गये विषय को स्मृतियों के आलोक में प्रस्तुत करता है। कुछ प्रमुख संस्मरण लेखकों में पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, देवेंद्र सत्यार्थी, भदंत आनंद कौशल्यायन, शांतिप्रिय द्विवेदी आदि नाम लिये जा सकते हैं। संस्मरण किसी व्यक्ति पर आधारित हो सकता है तो किसी घटना पर भी। घटना पर आधारित संस्मरण के उदाहरण के रूप में कक्षा–7 की पुस्तक *वसंत* (भाग–2) में शामिल पाठ 'अपूर्व अनुभव' को देख सकते हैं। तेत्सुको कुरोयानगी द्वारा रचित इस संस्मरण में लेखिका ने अपने स्कूली दिनों को याद किया है। स्कूल का परिवेश कैसा था, यह जानना दिलचस्प है। पाठ में दिए गये परिचय की चंद पंक्तियाँ, इस लिहाज़ से उल्लेखनीय हैं— 'यह एक ऐसी अद्भुत पाठशाला और उसमें पढ़ने वाले बच्चों की कहानी है, जिनके लिए रेल के डिब्बे कक्षाएँ थीं, गहरी जड़ोंवाले पेड़ पाठशाला का गेट, शाखा बच्चों के खेलने के कोने। इस अनोखे स्कूल के संस्थापक थे, श्री कोबायाशी। लेखिका स्वयं इस स्कूल की छात्रा थीं।' पाठ में एक ऐसे शारीरिक चुनौती वाले बच्चे के अपूर्व अनुभव का वर्णन किया गया है जिसे पोलियो है। लेखिका ने उस जापानी परिवेश का सुंदर वर्णन किया है, जिसमें बच्चे किसी-न-किसी पेड़ को अपना पेड़ मान लेते हैं और जब कोई दूसरा उस पेड़ के पास आता है तो उसे पेड़ के साथ साहचर्य स्थापित करने के लिए उस बच्चे से अनुमति लेनी पड़ती है, उसी तरह जिस बच्चे का पेड़ है, वह उन

आत्मीय स्वजनों को पेड़ के आनंद के लिए आमंत्रित करता है, जिसे वह बहुत पसंद करता है। विश्वप्रसिद्ध जापानी रचना *तोत्तो-चान* एक ऐसे स्कूल के अद्भुत वर्णन पर आधारित है जो पारंपरिक स्कूल से अलग है। जहाँ संवेदना और अपनेपन के गाढ़े मनोभाव सक्रिय हैं। पाठ में लेखिका ने ऐसे अनेक प्रसंगों को याद किया है। इस संस्मरण को पढ़ाते समय अध्यापक परिवेश से जुड़ी किसी घटना से तादात्मीकरण स्थापित कर सकता है। ज़रूरत इस बात की भी है कि संस्मरण विधा की विशेषता भी बताई जाए। उसी तरह पाठ की एक उल्लेखनीय विशेषता है, शारीरिक चुनौती प्राप्त लोगों के प्रति हमारी समझ बदलने की। पर यह संदेश आरोपित नहीं होना चाहिए। पाठ का अंतिम चरण इस दृष्टि से विशेषतौर पर उल्लेखनीय है, 'तोत्तो-चान उस समय यह तो न समझ पाई कि यासुकी-चान के लिए जो कहीं भी दूर तक चल नहीं सकता था, घर बैठे चीज़ों को देख लेने के क्या अर्थ होंगे? वह तो यह ही सोचती रही कि सूमो पहलवान घर में रखे किसी डिब्बे में कैसे समा जाएँगे? उनका आकार तो बड़ा होता है, पर बात उसे बड़ी लुभावनी लगी। उन दिनों टेलीविज़न के बारे में कोई नहीं जानता था। पहले-पहल यासुकी-चान ने ही तोत्तो-चान को उसके बारे में बताया था।' वस्तुत: किसी भी रचना का अध्यापन करते समय उस रचना की विशिष्टता को रूप और अंतर्वस्तु के स्तर पर विश्लेषित करना ज़रूरी है।

अब सवाल यह है कि कोई विद्यार्थी संस्मरण से गुज़रकर क्या हासिल करता है। दरअसल कोई बेहतरीन संस्मरण उसके जीवन में यह अवसर मुहैया कराता है कि वह अतीत के किसी प्रसंग की ओर फिर से जाए। उसे वह अपने समय की बुनावटों और भाषा में पुनर्रचित कर सके।

कुछ आवश्यक बिंदु...

गद्य के अध्यापन के सिलसिले से जुड़ी उल्लिखित सारी बातों को समझने के साथ-साथ यह समझना भी ज़रूरी है कि प्रत्येक शिक्षक या शिक्षिका की निजी विशेषताएँ होतीं हैं, ठीक उसी तरह कक्षा की स्थितियाँ भी अलग-अलग तरह की होती हैं। अध्यापन के सिलसिले में इनका ध्यान रखना भी ज़रूरी है।

संस्मरण से मिलती-जुलती एक गद्यविधा 'जीवनी' भी है। जीवनी में किसी सम्मानित व्यक्ति की उन विशेषताओं का उद्‌घाटन किया जाता है, जिनके चलते वह एक मशहूर शख्सियत में रूपांतरित होता है। अब आइए इस विधा के बारे में थोड़ी और जानकारी हासिल करें। *हिंदी साहित्यकोश* भाग–2 का वर्णन इस संदर्भ में उल्लेखनीय हो सकता है। उसके अनुसार, 'किसी व्यक्तिविशेष के जीवन-वृत्तांत को जीवनी कहते हैं। जीवनी का अंग्रेज़ी पर्याय 'लाइफ़' अथवा 'बायोग्राफ़ी' है। हिंदी में जीवनी को जीवन-चरित अथवा

जीवन-चरित्र भी कहा जाता है। इनमें कोई मौलिक अंतर नहीं जान पड़ता। जीवन-चरित कालांतर में आधुनिक और संक्षिप्त होकर जीवनी बन गया।' हिंदी में जीवनी लेखन के शुरुआती दौर में 1893 में कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'मीराबाई' की जीवनी लिखी। उसी तरह भारतेंदु हरिश्चंद्र, राधाकृष्ण दास, मुंशी देवी प्रसाद, बालमुकुंद गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र आदि की लिखी जीवनियाँ भी महत्वपूर्ण मानी गयीं। रामविलास शर्मा, अमृतराय, विष्णु प्रभाकर जैसे रचनाकारों को आधुनिक काल के बेहद महत्वपूर्ण निबंध लेखकों में याद किया जाता है। जीवनी या उसके किसी अंश का अध्यापन करते समय भी किसी रोचक बात से कक्षा की शुरुआत की जा सकती है। मसलन किसी लड़के या लड़की से यह पूछ कर बात आगे बढ़ायी जा सकती है कि क्या वे किसी ऐसे व्यक्ति के जीवन से परिचित हैं जिनसे वे प्रभावित हैं, फिर उनकी उन उल्लेखनीय विशेषताओं के बारे में बात की जा सकती है, जिनके कारण उनकी शख्सियत मशहूर हुई। ज़ाहिर है, फिर बात का सिलसिला चल निकलेगा और पाठ भी इस संदर्भ में अपनी उपस्थिति दर्ज करेगा। उसी तरह जीवनी में सही तथ्य का होना ज़रूरी है।

विद्यार्थियों को इस संदर्भ में जागरूक बनाना ज़रूरी है। इस चर्चा के बाद ज़रूरत इस बात की है कि कोई उदाहरण के माध्यम से हम उक्त बातों को समझें। *स्पर्श,* कक्षा–9 (द्वितीय भाषा) में शामिल एक संस्मरण है— *वैज्ञानिक चेतना के वाहक चंद्रशेखर वेंकट रमन*। लेखक हैं— धीरंजन मालवे। इस पाठ में जीवन के उन महत्वपूर्ण पक्षों का चित्रण है, जिनके चलते एक सामान्य मनुष्य वैज्ञानिक में रूपांतरित होता है। यदि शीर्षक को ध्यान से देखें तो लेखक ने पहले ही अपना मंतव्य ज़ाहिर कर दिया है। लेखक एक शब्द का प्रयोग करते हुए ज़ाहिर करता है कि चंद्रशेखर वेंकट रामन की बुनियादी विशेषता थी, उनमें वैज्ञानिक चेतना का होना। पाठ का ताना-बाना इसी मंतव्य के इर्द-गिर्द बुना गया है। जीवनी लेखक बहुधा किसी एक विचार के इर्द-गिर्द रचना यात्रा की विभिन्न मंज़िलें तय करता है। अध्यापन करते समय यदि कोई ऐसी बात नज़र आये तो उसे ध्यान में रखते हुए अपनी बात आगे बढ़ानी चाहिए। हाँ, यह ध्यान रखने की ज़रूरत भी है कि कहीं अन्य आनुषंगिक बातें न छूट जाएँ। वैज्ञानिक चेतना का मतलब होता है कार्य-कारण संबंध को समझना। पाठ में शामिल एक अवतरण से इसे समझें, 'पेड़ से सेब गिरते हुए तो लोग सदियों से देखते आ रहे थे, मगर गिरने के पीछे छिपे रहस्य को न्यूटन से पहले कोई और नहीं समझ पाया था। ठीक उसी प्रकार विराट समुद्र की नील-वर्णीय आभा को भी असंख्य लोग आदिकाल से देखते आ रहे थे, मगर इस आभा पर पड़े रहस्य के पर्दे को हटाने के लिए हमारे समक्ष उपस्थित हुए सर 'चंद्रशेखर वेंकट रमन।' कहना न होगा प्रत्येक जीवनी में प्रामाणिकता और किसी विशेष पहलू का उद्‌घाटन ज़रूर होता है, जिसे उक्त पाठ के आलोक में व्याख्यायित किया जा सकता है।

7.1.6 नाटक को पढ़ना-पढ़ाना

नाटक अन्य गद्य विधाओं के बरक्स स्वाभाविक रूप से सामूहिक विधा है। कहानी, कविता, निबंध, रेखाचित्र या अन्य विधाओं में जहाँ रचनाकार और पाठक या श्रोता की भागीदारी होती है, वहीं नाटक में इनके अलावा अन्य कई तरह के लोगों (जैसे—निर्देशक, मंच सज्जा, प्रकाश व्यवस्था, साज-सज्जा प्रभारी आदि) की भागीदारी होती है। अपनी प्रवृत्तिगत विशेषता के कारण यह साहित्य की लोकप्रिय विधा है, जिसका इतिहास कविता जितना ही पुराना है। भारतीय संदर्भों में प्राय: ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में लिखी गयी नाट्यशास्त्र की उपस्थिति इस तथ्य का संकेत है कि इस विधा को वेदों जितनी महत्ता हासिल थी। यहाँ यह उल्लेख कर देना ज़रूरी है कि काव्यशास्त्रीय परंपरा में भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' को 'पंचम वेद' की संज्ञा दी गई। लोकनाटकों की लंबी परंपरा भी इस बात की गवाही देती है कि भारत का विशाल जनसमुदाय इस विधा से गहरे रागात्मक भाव से जुड़ा रहा।

> नाटक एक सृजनात्मक गतिविधि है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों को प्रकट कर सकता है और विभिन्न परिस्थितियों का मूल्यांकन कर सकता है। इस प्रक्रिया में अस्पष्ट विचारों का विकेंद्रीकरण हो जाता है, दुविधाजनक विचार समझ में आ जाते हैं और टूटे-फूटे विचार पूर्ण हो जाते हैं। नाटक अन्य सृजन कलाओं की तरह ही व्यक्ति को अपने विचारों एवं अनुभवों का परीक्षण करने के लिए बाध्य करता है, काल्पनिक दृष्टिकोण प्रेरित होता है और हमें अपने आस-पास के संसार की अधिक गहराई से समझ आती है।
>
> —आधार पत्र — *कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच*, एन.सी.ई.आर.टी.

आधुनिक ढंग के नाटकों की शुरुआत 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' से मानी जाती है। नाटक जैसी विधा को आधुनिकता के साँचे में ढालने के पीछे भारतेंदु जैसे दिग्गज साहित्यकार की मंशा साफ़ थी। वे अपने समय के विरोधाभासों को ऐसी कारगर विधा के मार्फत जनता के बड़े समुदाय के बीच ले जाना चाहते थे, जिसकी पहुँच और जिसका असर अन्य किसी भी माध्यम की अपेक्षा ज़्यादा कारगर हो। गौरतलब है कि भारतेंदु के पहले के नाटकों पर कल्पनाशीलता के आग्रह इस कदर हावी थे कि समसामयिक विषयों/मुद्दों पर नाटककारों का ध्यान प्राय: नहीं जाता था। उन्होंने *अंधेर नगरी* जैसे नाटक के माध्यम से तत्कालीन ब्रितानी शासन व्यवस्था पर गहरा प्रतीकात्मक वार किया। तब से अब तक के हिंदी नाटकों ने जनसमुदाय की वृहत आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व किया। ऐसे महत्वपूर्ण हिंदी नाटकों

में *ध्रुवस्वामिनी* (जयशंकर प्रसाद), *अंधा युग* (धर्मवीर भारती), *आषाढ़ का एक दिन* (मोहन राकेश), *बकरी* (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना), *एक और द्रोणाचार्य* (शंकर शेष), *कबिरा खड़ा बाज़ार में* (भीष्म साहनी), *महाभोज* (मन्नू भंडारी), *कोर्ट मार्शल* (स्वदेश दीपक), *जिन लाहौर नहीं देख्या* (असगर वजाहत) जैसे नाटक खूब सराहे गए।

नाटक अपने कलेवर में विभिन्न तरह के संवादों का ऐसा अवसर मुहैया कराने में बखूबी सफ़ल है, जिसमें अनेक व्यक्तियों, समुदायों, वर्गों, संस्कृतियों की न सिर्फ़ जातीय विरासत बल्कि निर्मित हो रही नयी अस्मिता को भी अभिव्यक्ति मिलती है।

नाटक शिक्षण के लिए गतिविधियाँ

नाटक के शिक्षण में नाटक के तत्वों का उपयोग करना मददगार रहता है। उदाहरण के लिए संवाद तथा कथ्य नाटक के तत्वों में से हैं। तो नाटक-शिक्षण के दौरान संवाद अदायगी तथा कथ्य के अवबोधन पर बल दिया जाना चाहिए। यह कल्पना करवाना नाटक-शिक्षण का भाग ही है कि कौन-से पात्र अपने संवाद किस तरह से बोलेंगे।

नाटक-शिक्षण का एक उद्देश्य इस प्रकार हो सकता है—

उद्देश्य— 1

पाठों के संवादों को प्रसंगानुसार प्रस्तुत करना

गतिविधि— 1

आइए, उद्देश्य—1 पर आधारित इस गतिविधि पर विचार करते हैं— नाटक से परिचय हो जाने के बाद विद्यार्थियों को छोटे-छोटे समूहों में बाँट दिया जाए, उनसे कहा जाए कि वे नाटक के किसी एक अंक का चुनाव कर लें। विद्यार्थी उसके उस अंक में शामिल पाठों के संदर्भ तथा व्यक्तित्व को समझकर उनके अनुकूल संवाद बोलने के तरीकों का अभ्यास करें। अपने-अपने समूह में अभ्यास करने के बाद प्रत्येक समूह कक्षा के सामने संवाद अदायगी करेगा। सभी समूहों की बारी आ जाने के बाद शिक्षक/शिक्षिका संवाद अदायगी के तरीकों तथा संवाद अदायगी में मददगार पक्षों पर विद्यार्थियों के साथ चर्चा करेंगे/करेंगी।

इस गतिविधि की मदद से विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता का विकास होगा। वे विभिन्न पात्रों के बीच रिश्तों की पहचान करके उन भावों को पकड़ सकते हैं जो किसी स्थिति विशेष में पात्रों के भीतर उमड़ रहे हैं। इस प्रकार उनमें संगत रसों का संचार भी होगा। वे नाटक में निहित संदेशों को समझ सकते हैं और विश्लेषित कर सकते हैं।

7.1.7 समकालीन साहित्य की पढ़ाई— कुछ संदर्भ

दलित साहित्य

अनेक तरह की अभिव्यक्तियाँ मिलकर सृष्टि का निर्माण करती हैं। ये सारे रूप वैध और सम्मान के हकदार हैं। साहित्य संसार के अनेक संदर्भ ऐसे हैं, जिन पर पिछले कुछ दशकों में विशेष रूप से विचार-विमर्श की प्रक्रिया आरंभ हुई है। दलित साहित्य और महिला लेखन परिदृश्य को इसी आलोक में देख सकते हैं। साहित्य के इन रूपों के प्रति संवेदनशील होने के संकेत *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में शामिल आधार पत्रों से सहज ही मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए 'शिक्षक-शिक्षा' पर आधारित राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र 'सामाजिक संदर्भ' की चर्चा करते हुए कहता है, 'शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में आधुनिक भारतीय समाज के मुख्य मुद्दों, जैसे— समाज का बहुलतावादी स्वभाव और अस्मिता के मुद्दे, जेंडर समानता और गरीबी को महत्व दिया जाना चाहिए। इससे शिक्षकों को शिक्षा को संदर्भित करने में सहूलियत होगी और शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों की गहरी समझ और समाज से उसके संबंधों का बोध भी हो सकेगा।' ज़ाहिर है साहित्य के इन रूपों के प्रति संवेदनशीलता भाषा और साहित्य शिक्षण का अनिवार्य पहलू है। शिक्षक-शिक्षा समकालीन भारतीय संदर्भ में इस सच्चाई से बाखबर होना ज़रूरी समझता है कि संवेदना का विस्तार समाज की हर आवाज़ तक हो। शिक्षक-शिक्षा के संदर्भ में आधार पत्र की संस्तुति ध्यान देने योग्य है— शिक्षा के संपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह ज़रूरी है कि बहुलतावादी समाज की ज़रूरतों के आलोक में जीवन-जगत की अनेक गतिविधियों, सामाजिक हलचलों और बदलावों को समझने और व्याख्यायित करने की उसमें सामर्थ्य हो। परंपरागत भारतीय समाज में शिक्षा की परिधि से बाहर के समूहों पर शिक्षाविदों का ध्यान उस समय गया जब शिक्षा के लक्ष्य की परिधि में समाज के समस्त लोगों को शामिल करना ज़रूरी समझा गया। वंचित समाज के बारे में कम-से-कम दो तरह से बात की जा सकती है। एक तो यह कि वंचित समाज के लोग अपनी परिधि के भीतर की दुनिया को कैसे देखते हैं, दूसरी यह कि वे परिधि के बाहर के समाज को किस रूप में देखते हैं?

हाशिये के समाज की चर्चा की परंपरा वैसे तो सिद्ध-नाथ साहित्य, भक्ति साहित्य और आधुनिक साहित्य में मिल जाती है। पर एक बात उल्लेखनीय है, वह यह कि मध्यकालीन साहित्य में जहाँ वंचित-उपेक्षित तबके की चर्चा हुई है, उनका संदर्भ आध्यात्मिक है, वहीं आधुनिक साहित्य में संदर्भ लौकिक है, यानी राजनैतिक-सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों के मद्देनज़र दलित दमन या भागीदारी की चर्चा है। इस दिशा में अस्सी का दशक महत्वपूर्ण है।

साहित्य संसार में पुरज़ोर तरीके से भारतीय लोकतांत्रिक और संवैधानिक व्यवस्था के आलोक में, समकालीन दलित जीवन के विविध पक्षों को संवेदनशील नज़रिये से देखने, समझने और विश्लेषित करने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। आवश्यकता इस बात की है कि मौजूदा दौर की चुनैतियों के मद्देनज़र शिक्षक-शिक्षा के विविधवर्णी प्रसंगों में दलित लेखन-संसार को शामिल किया जाए। समकालीन दलित रचनाकार की रचनाओं के साथ ही वर्ण-व्यवस्था की यातनापूर्ण रुढ़ियों से संघर्ष करने वाले भारतीय विचारकों की चिंतन परंपरा से विद्यार्थियों को रू-ब-रू कराने के उद्देश्य से एन.सी.ई.आर.टी. के पाठ्यक्रम में बदलाव किये गए, उदाहरण के लिए ज्योतिबा फुले पर आधारित पाठ या *जूठन* (ओमप्रकाश वाल्मीकि) जैसी रचनाएँ किताबों में शामिल कर मुकम्मल भाषा और साहित्य शिक्षण का परिदृश्य संभव किया गया। यह ध्यान रखा गया कि शामिल अध्याय वैचारिक मुद्राओं में विशेषतौर पर मुखर हों। जिन रचनाओं में दलित त्रासदी की चर्चा है, उन्हें पढ़ाते-विश्लेषित करते हुए रुढ़िमुक्त नज़रिये की ज़रूरत है। उदाहरण के लिए *मोचीराम* (धूमिल) या *हरिजन गाथा* (नागार्जुन) का अध्ययन भाषा के पारंपरिक सौंदर्य प्रतिमानों के आधार पर मुश्किल है।

> आज की तारीख में मुझे अब तक कोई ऐसी तेलुगु पाठ्यपुस्तक देखने को नहीं मिली है जो उत्पादन-आधारित बोलचाल की भाषा में लिखी गई हो। पोचम्मा, पोटाराजु, कट्टामाईसम्मा पर कोई अध्याय मुझे देखने को नहीं मिला है। ऐसा नहीं है कि इन देवी-देवताओं से जुड़ी कोई कहानी नहीं है। अगर इनका कोई कथावृत्त नहीं होता तो यह हज़ारों सालों तक लोगों के बीच बचे न रहते। किसी दलित बहुजन कथावाचक से इन कहानियों को सुनते वक्त हम इन पर मंत्रमुग्ध होकर रह जाते थे।
>
> —कांचा इलैया *मैं हिंदू क्यों नहीं हूँ*
>
> पृष्ठ संख्या–22, आरोही बुक ट्रस्ट, पहला संस्करण 2003

आदिवासी साहित्य

दलित या अनुसूचित जातियों की उपेक्षा के साथ ही अनुसूचित जनजाति या आदिवासी अस्मिता के प्रति भी प्रायः संवेदनशील नज़रिये का परिचय नहीं दिया गया। साहित्य के व्यापक संसार के अनुभवों में आदिवासी स्वरों की दुनिया या तो नदारद थी या फिर उनकी बेहद धुंधली मौजूदगी थी। असल में उनकी ऐसी स्थिति के कारण साहित्य संसार एक बहुत बड़े अनुभव संसार से वंचित और बेखबर था। दूसरी तरफ़ शैक्षिक संतुलन के लिए समावेशी शिक्षा की अवधारणा भी ज़रूरी थी। कहना न होगा समावेशी शिक्षा की बात

सीमांत समाज की चर्चा किए बिना नहीं हो सकती है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या* का आधार पत्र 3.1 इस तथ्य को विशेषतौर पर रेखांकित करता है कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति दोनों ही ऐसे समुदाय हैं, जिन्हें ऐतिहासिक कारणों से औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था से बाहर रखा गया। पहले को जाति के आधार पर विभाजित समाज में सबसे निचले पायदान पर होने के कारण और दूसरे को उनके भौगोलिक अलगाव 'सांस्कृतिक अंतरों तथा मुख्यधारा कहे जाने वाले प्रबल समुदाय ने हाशिये पर कर दिया।' ज़ाहिर है अब ऐसे अध्यापन कौशल की नितांत आवश्यकता है कि वह आदिवासी संदर्भों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील हो। पाठयक्रमों में ऐसे अनेक संदर्भों को शामिल करने का सिलसिला अभी नया है, पर उनकी उपस्थिति गौरतलब है। आदिवासी संस्कृति और समाज को बचाने की चिंता संबंधी साहित्य *आओ मिलकर बचाएँ* (निर्मला पुतुल)। अध्यापक शिक्षा के मौजूदा परिदृश्य को समकालीन विकास प्रक्रिया की संश्लिष्टताओं से रू-ब-रू होना होगा, क्योंकि बड़ी संख्या में आदिवासी समाज को विस्थापन का दारुण दु:ख झेलना पड़ रहा है। आदिवासी क्षेत्र के अनेक रचनाकारों ने इस भयावह सच का आख्यान किया है। आदिवासी क्षेत्रों में जहाँ समृद्ध प्राकृतिक संपदाएँ हैं, उनका मौजूदा व्यवस्था और देशी-विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा लगातार उपयोग किया जा रहा है। विकास नीतियाँ अभी पुनर्वास की ऐसी न्यायसंगत व्यवस्था पर काम कर रही हैं, जिनपर आदिवासी समाज का भरोसा कायम हो। आदिवासी क्षेत्रों में रचे जा रहे साहित्य में इन स्वरों की मौजूदगी देखी जा सकती है।

आदिवासी समाज का एक बड़ा हिस्सा पूर्वोत्तर भारत में बसता है। वहाँ की अपनी विशिष्ट संस्कृति है। साथ ही वर्षो से पूर्वोत्तर आदिवासी क्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा हिंसा की आग में झुलस रहा है। इन सभी स्वरों की मौजूदगी वहाँ के साहित्य में है। शिक्षक-शिक्षा को ऐसे सभी संदर्भों पर कहीं पहले से अधिक व्यापक नज़रिये से विचार करना होगा। कक्षायी अध्यापन की दुनिया में साहित्य और परकाया प्रवेश के रिश्ते ऐसे अवसर मुहैया कराते हैं हम विभिन्न वर्गों और समुदायों के अहसासों में प्रवेश करें और शिक्षा के जनतांत्रीकरण और संवैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें। यहाँ मुद्दा यह नहीं है कि कोई घटना सच है या झूठ, पर

> एक लोकतांत्रिक नागिरक में सच को झूठ से अलग छाँटने, प्रचार से तथ्य को अलग करने, धर्मांधता और पूर्वाग्रहों के खतरनाक आकर्षणों को अस्वीकार करने की समझ व बौद्धिक क्षमता होनी चाहिए।
>
> —माध्यिमक शिक्षा आयोग—1952।
>
> *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में जिन पाँच मार्गदर्शक सिद्धांतों की चर्चा की गई हे उनमें से एक सिद्धांत है— एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास, जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य-व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हों।

ऐसे अवसरों का आना इस सच्चाई का द्योतक है कि समाज के बहुत सारे स्वरों को अभिव्यक्त होना अभी बाकी है।

मैंने अपनी पाठ्यपुस्तकों से जाना

कि केवल पुरुष ही राजा और सिपाही होते हैं,
फिर मेरे हाथ लगी एक ऐसी किताब,
जिसमें बताया गया था कि रानियों ने भी राज किया है
वे भी दुश्मनों से लड़ी हैं।
मैंने अपनी पाठ्यपुस्तकों से जाना,
केवल पुरुष ही डॉक्टर होते हैं,
लेकिन जब मैं सचमुच एक डॉक्टर के पास गई
तो मैं हैरत में पड़ गई कि वह एक स्त्री थी,
मैंने अपनी पाठ्यपुस्तकों से जाना कि
हमारे देश में केवल पुरुष ही किसानी कर्म करते हैं
लेकिन एक ट्रेन-यात्रा के दौरान मैंने देखा
कि स्त्रियाँ खेतों में काम कर रहीं थीं
और मैंने समझा कि मुझे अभी देखकर
बहुत कुछ सीखना है।

—पूजा, रमैया, अनुज और उत्कर्ष, कक्षा–8, वडोदरा
भूमिका, आधार पत्र–3.2, पोज़ीशन पेपर, नेशनल फ़ोकस ग्रुप— जेंडर इश्यूज़ इन एजूकेशन, 2006

स्त्री साहित्य

अभिव्यक्ति के जिन रूपों पर हालिया दशकों में विशेष तौर पर ध्यान गया है, स्त्री लेखन उनमें बेहद उल्लेखनीय है। स्त्री लेखन पर बात करने से पहले यह समझ लेना ज़रूरी है कि स्त्री लेखन से आशय क्या है। स्त्री लेखन का मतलब महज़ इतना-भर नहीं है कि स्त्रियों का लिखा साहित्य। स्त्री लेखन का आशय कहीं और बड़े सरोकारों की ओर इशारा करता है। दरअसल ऐतिहासिक विकास क्रम में जिन तीन संस्थाओं ने बड़ी भूमिका निभाई उन्हें हम राजसत्ता, धर्मसत्ता और पितृसत्ता के रूप में पहचानते हैं। स्त्री लेखन पितृसत्ता के वर्चस्व को नकारता है और एक ऐसे समतामूलक समाज की कामना करता है, जहाँ स्त्री, पुरुष दोनों की महज़ साझेदारी न हो, बल्कि निर्णायक भूमिका भी हो। ऐतिहासिक विकास क्रम में स्त्रियों की भागीदारी की पहचान, पुरुषों द्वारा स्त्री उत्पीड़न के विभिन्न संदर्भ, स्त्री मुक्ति के बहुआयामी सरोकार, आपबीती के आख्यान द्वारा विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं की प्रतिबद्धता की पहचान, ये कुछ ऐसे संदर्भ हैं जो महिला लेखन में आसानी से पहचाने जा सकते हैं।

अकसर लोग फौरीतौर पर स्त्री लेखन या स्त्री मुक्ति को पश्चिम के प्रभाव से आई अवधारणा मान लेते हैं। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि उत्पीड़न का कोई रूप जितना पुराना होता है, उनसे असहमत स्वरों की मौजूदगी भी उतनी ही पुरानी होती है। अन्य शब्दों में पुरुष वर्चस्व/स्त्री उत्पीड़न के संदर्भ जितने पुराने हैं, उतनी ही पुरानी पुरुष वर्चस्व/उत्पीड़न से मुक्ति की आकांक्षा भी है। उदाहरण के तौर पर ईसा पूर्व छठी शताब्दी की वे

बौद्ध थेरी गाथाएँ देखी जा सकती हैं, जिनकी मुक्तिकामी चेतना के विविध संदर्भ उत्कृष्ट साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ हैं। ललद्यद, अंदाल, मीरा जैसी अनेक स्त्री रचनाकारों में पितृसत्तात्मक निर्मितियों से संघर्ष के स्वर मुखर हैं। उसी तरह 1882 में ताराबाई शिंदे की रचना 'स्त्री-पुरुष तुलना' और एक अज्ञात हिंदू लेखिका रचित *सीमांतनी उपदेश* जैसी कृतियों ने संजीदगी से इस मसले पर विचार किया। महादेवी वर्मा की *शृंखला की कड़ियाँ*, 'पथ के साथी' जैसी कृतियाँ इस चेतना की अगली कड़ी हैं, लेकिन यह भी सच है कि पश्चिम की स्त्रीवादी दार्शनिक सिमॉन द बोउआर का प्रभाव दुनिया-भर के महिलावादी चिंतन पर पड़ा। भारतीय संदर्भ भी इससे प्रभावित हुए। हिंदी की दुनिया में अस्सी के दशक में विशेष तौर पर विपुल मात्रा में स्त्री मुक्ति की रचनाएँ सामने आयीं। अनेक स्त्री आत्मकथाओं का आना स्त्री लेखन के आधुनिक दौर का पहला चरण है।

स्त्री साहित्य का अध्ययन अनेक गवाक्षों को खोलता है। एक ऐसी कक्षा जिसमें समावेशी शिक्षा की परिकल्पना आकार लेती हो, वहाँ यह समझना बेहद ज़रूरी है कि स्त्री या पुरुष को गढ़ने में शब्द, बिंब, रूपक या पाठ चयन कैसे उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं।

उसी तरह आलोचना के पारंपरिक पैमाने एक हद तक पुरुष पाठ हैं। यह जानना दिलचस्प और विशिष्ट है कि कैसे रचना का स्त्री पाठ अधिगम प्रक्रिया में नए आयामों को जोड़ता है। एक कक्षायी स्थिति में महिला लेखन या महिला संदर्भों को महिला नज़रिए से देखे बिना समावेशी अध्ययन के लक्ष्यों को पाना संभव नहीं है।

साहित्य की भाषा के पारंपरिक रूपकों, लेखन के तरीकों में स्त्री जीवन, उसकी उपस्थिति, उसकी यात्रा के प्रतिबिंब प्राय: प्रकट नहीं होते। पुरुष वर्चस्व की मानसिकता से प्रेरित साहित्य में स्त्री आवाज़ें एक हद तक अनुपस्थित रहीं। साहित्य के दायरे में आने वाली बहुसंख्यक आवाज़ें पुरुष की हैं, स्त्रियों की आवाज़ वहाँ बहुत कम है। लिहाजा कक्षा में पुरुष द्वारा रचित साहित्य को स्त्री संवेदनशीलता के साथ पढ़ना बेहद चुनौतीपूर्ण अनुभव है।

— पृष्ठ संख्या-69, 3.2, पोज़ीशन पेपर, नेशनल फ़ोकस ग्रुप — जेंडर इश्यूज़ इन एजूकेशन, 2006. *Mulis et; C. Fortem, que hae tam sed in Etrordi endiesilis.*

बाल साहित्य

बाल साहित्य क्या है? और बाल साहित्य का भाषा शिक्षण से क्या रिश्ता बनता है? इन सवालों को एक-एक कर उठाया जाए तो सबसे पहले यह तय करें कि किसे कहेंगे बाल साहित्य— जो बच्चों के लिए है या जो बच्चों के लिए लिखा गया? शायद इन दोनों सवालों से हमारे इस विषय का सीधा रिश्ता नहीं बनेगा, पर बच्चों के लिए लिखे जाने वाले साहित्य का स्कूली स्तर पर भाषा शिक्षा से सीधा ताल्लुक है।

1986 की शिक्षा नीति और *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* ने भी बच्चों पर केंद्रित शिक्षा की बात की है, पर अभी हाल तक भाषा के पाठ्यक्रम को विचारते समय या फिर बच्चों/किशोरों के लिए खास साहित्य, बाल साहित्य को गैर ज़रूरी ही माना जाता रहा है। इसकी वजह ढूँढे तो एक तरफ़ स्थिति यह है कि लेखन संसार के केंद्र में कभी बच्चा/किशोर रहा ही नहीं। दरअसल साहित्य लेखन की दुनिया कहीं-कहीं माँग और आपूर्ति के सिद्धांत से संचालित दिखाई पड़ती है। बच्चे की ज़रूरत या अधिकार हमारे यहाँ पहले कभी बहस का ज़रूरी मुद्दा नहीं बना। जबकि देश का अर्थतंत्र और सामाजिक विकास के तमाम ताने-बाने जिसके लिए बनाए गए वह कौन है? उन सबका केंद्र यही किशोर/बच्चा तो था। पर शिक्षा या इसके निर्माण की कोशिश कहीं नहीं हुई। अब शिक्षा का अधिकार कानून बनने पर कुछ हलचल हो रही है।

'उस दौर में संपादक, प्रकाशक और लेखक बाल साहित्य की रचना को गंभीर सामाजिक काम मानते थे। बच्चों की पत्रिकाएँ और किताबें मज़बूत कागज़ पर छपती थीं और उनकी छपाई बड़े ध्यान से की जाती थी। उत्तर भारत के उभरते हुए मध्यमवर्ग की सांस्कृतिक चेतना और महत्वाकांक्षा में बच्चे के लिए एक खास जगह थी। बच्चा एक सपना था, जिसमें खोकर मध्यवर्गीय लेखक या कवि कुछ देर के लिए अपनी सामाजिक कुंठाओं से मुक्त हो लेता था। यह सपना एक आज़ाद देश का सपना भी था। उसे देखकर कई लेखक कल्पनाशक्ति पाते थे। यही कारण है कि वे इन विषयों को बच्चों से छिपाते नहीं थे। प्रेमचंद की 'ईदगाह' कहानी का हामिद आत्मसम्मान की खातिर कस्बे के धनी परिवारों के लड़कों से अपनी निश्छलता और कल्पनाशक्ति के बूते पर ही भिड़ा था।'

—कृष्ण कुमार, *बचपन में हिंदी के प्रति अपनापन रहे कैसे?*
पृष्ठ संख्या-75–76, दीवार का इस्तेमाल,
एकलव्य का प्रकाशन, जन. 2008

हिंदी साहित्य में बाल साहित्य में बच्चों और किशोरों को किस रूप में प्रस्तुत किया गया है? अगर इस पर ध्यान दें तो आज़ादी के कुछ पहले और कुछ बाद के वर्षों तक ऐसी बहुत-सी रचनाएँ लिखी गईं, जिन्हें पढ़कर बच्चे/किशोर अपने समय और समाज के यथार्थ को सहज ढंग से समझ सकते थे।

बाद में चलकर बच्चे आदर्श रूप में प्रस्तुत किए जाने थे, उसका परिणाम यह भी हुआ कि हिंदी शिक्षा को बच्चों के आदर्श चरित्र-निर्माण के नज़रिये से सोचा जाने लगा। बच्चों के लिए लिखी गई रचनाएँ या बच्चों पर केंद्रित रचनाओं में प्रेमचंद की *ईदगाह* कहानी ध्यान देने योग्य है, पर इस रचना का बच्चों की दृष्टि से पाठ करने की समस्या बनी रही। हामिद का दादी के लिए चिमटा खरीदने वाली बात को, उसकी बड़ों के प्रति संवेदना

भाव को तो देखा, समझा और शिक्षण किया जाता रहा, पर खिलौनें के बजाय चिमटा जैसी चीज़ खरीदने पर साथियों के सवालों को हामिद कैसे एक-एक कर इस तरह काटता चला जाता है और आत्मविश्वास से, अपने तर्कों से उसे अपने सुरक्षा-शास्त्र के रूप में (बंदूक की तरह कंधे पर रखकर) इस्तेमाल करता है। हमारी कक्षाओं में इस नज़रिये से भी देखना होगा।

ऐसे बहुत से पाठों को बच्चों के संदर्भ से देखना होगा। जैसे पहले कहा गया है कि हिंदी साहित्य का बहुत बड़ा हिस्सा बच्चे/किशोरों के नज़रिये से नहीं लिखा गया है। ज़ाहिर है कि ऐसी रचनाएँ पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं बन पातीं, पर उन्हें बाल-मनोविज्ञान और किशोर-संवेदनशीलता के नज़रिये से पढ़ना-पढ़ाना होगा।

भाषा संस्कृति का अभिन्न तत्व है, इसमें संस्कृति के मूल्यों को इनकोड किया जाता है, तथा उन्हें प्रसारित किया जाता है। इसलिए यह समझना ज़रूरी है कि भाषा के ज़रिये स्त्री और पुरुष कैसे गढ़े जाते हैं। दुनिया की अन्य अनेक बातों की तरह भाषा भी स्त्रियों की स्थिति का परिचय देती है।

—पोज़ीशन पेपर, नेशनल फ़ोकस ग्रुप— जेंडर इश्यूज़ इन एजुकेशन, 2006 पृष्ठ संख्या–67, 3.2

भाषा से संवाद

प्रशिक्षण के दौरान

1. एक कहानी का चार अलग-अलग समूह द्वारा विश्लेषण और उसकी प्रस्तुति कीजिए।
2. सभी विद्यार्थी किसी एक रचना की समीक्षा करें तथा एक-दूसरे के समीक्षित बिंदुओं पर कक्षा में चर्चा करें।
3. समूह में एक ही विषय पर अलग-अलग विधाओं की रचनाओं का संकलन और उनका तुलनात्मक विश्लेषण करें।
4. वर्तमान बाल साहित्य की समीक्षा करें।
5. अपनी मनपसंद तीन कहानियों की समीक्षा करें।

कक्षा शिक्षण के दौरान

1. बच्चों से एक ही विषय जैसे 'बादल' पर स्वतंत्र रूप से कुछ लिखने को कहें (कोई विधा न सुझाएँ)।
2. नीचे लिखे बिदुंओं को पढ़ें और एक रचना को ध्यान मे रखकर और कक्षा विशेष को ध्यान में रखते हुए कक्षा प्रविधि तैयार करें।
   (क) एक रचना अनेक स्तर (अलग-अलग कक्षाओं में एक ही रचना को पढ़ाने से संबंधित)
   (ख) एक रचना अनेक अर्थ (अलग-अलग नज़रिये से एक ही रचना को पढ़ना)
   (ग) एक रचना विभिन्न बच्चे (संदर्भ— चुनौतीपूर्ण बच्चे)।
3. कोई नाटक या उपन्यास पढ़वाने के बाद उसके पात्रों के रहन-सहन, बोली आदि की चर्चा कर समाज में इनमें आए बदलाव पर चर्चा करें, विभिन्न व्यवसाय तथा व्यवसाय से जुड़े लोगों, उनके कार्यों और समस्याओं पर बातचीत करें।
4. कक्षा 6 की हिंदी-पुस्तक में से *झाँसी की रानी* कविता, *नौकर* निबंध पाठ के बाद— 1857 के पहले, दौरान और बाद में घटी घटनाओं की टाइम लाइन (चार्ट) बनाएँ, गांधी जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं की टाइम लाइन (चार्ट), गांधी जी द्वारा चलाए गए आंदोलनों की टाइम लाइन (चार्ट) बनाएँ।

परियोजना कार्य

1. विद्यालयी अनुभव कार्यक्रम के दौरान भाषा शिक्षण को लेकर आने वाली कठिनाई पर क्रियात्मक शोध करना।
2. भाषा की कक्षा में उन अनुभवों को पिरोते हुए शिक्षण योजना बनाना।
3. स्थानीय कलाकार/कवि/लेखक से साक्षात्कार करना।
4. कक्षा 6–12 तक की हिंदी की पाठ्यपुस्तकों में से किसी एक कविता को चुनकर परिवेश से जोड़ते हुए उसके शिक्षण बिंदु तैयार करना।

टिप्पणी

इकाई
8

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री — निर्माण और विश्लेषण

8.1	**पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम एक, पर पाठ्यसामग्री अनेक**	**276**
8.1.1	पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री का विश्लेषण	277
8.1.2	पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री का अंतर्संबंध	285
8.1.3	शिक्षण की विषय-वस्तु से संबद्ध शोध	298
8.1.4	पाठ को कक्षा में ले जाने की तैयारी	301

8.1 पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम एक, पर पाठ्यसामग्री अनेक

यह देखने में आता है कि बहुत-सी ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें घर-परिवार या समुदाय में अंतरक्रिया के ज़रिये और अपने सहज प्रयासों से हम सीख लेते हैं। अपने भाव-विचार की अभिव्यक्ति, छोटे एवं बड़ों के साथ व्यवहार के तरीके, पारिवारिक व्यवसाय, स्थानीय स्तर पर प्रचलित विश्वास, मान्यताएँ और रीति-रिवाज़, अनेक कौशल जैसे— साइकिल चलाना, खाना पकाना, आरंभिक संख्या-ज्ञान इत्यादि हम सहज रूप से सीख लेते हैं। जिस तरह बहुत-सी चीज़ें घर-परिवार या समुदाय में सीखते हैं, उसी तरह बहुत-सी चीज़ें सीखने के लिए एक संस्थागत रूप-विद्यालय की आवश्यकता होती है। यह भी संभव है कि जो चीज़ें हमने घर-परिवार या समुदाय में सीखी हैं, उन्हें पुन: थोड़े अधिक व्यवस्थित रूप में विद्यालय में सिखलाया जाए।

> शिक्षा केवल पुस्तकों से सीखना, किन्हीं तथ्यों को कंठस्थ करना मात्र नहीं है। यह सीखना भी शिक्षा है कि अवलोकन कैसे किया जाए? पुस्तकें जो कह रही हैं, उसे कैसे सुना जाए कि जो वे कह रही हैं, वह सत्य है अथवा झूठ? ये सब शिक्षा के ही अंग हैं। परीक्षाएँ पास करना, कोई डिग्री एवं पद प्राप्त करना...ही शिक्षा नहीं है; उसका यह भी अर्थ है कि हम इस योग्य बनें कि पक्षियों के कलरव को सुन सकें; आकाश को देख सकें; पहाड़ियों के स्वरूप के अनुपम सौंदर्य का अवलोकन कर सकें; उनके साथ अनुभव कर सकें तथा उनका वास्तव में अपरोक्ष रूप से साक्षात्कार कर सकें।
>
> —जे. कृष्णमूर्ति (शिक्षा-संवाद)
>
> शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तियों के बीच ही नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज के बीच भी उचित संबंध का संवर्द्धन करना है और इसीलिए यह आवश्यक है कि शिक्षा सबसे पहले व्यक्ति की स्वयं अपनी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को समझने में सहायता करे।
>
> —जे. कृष्णमूर्ति (शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य)

हालाँकि इंसान का सीखना व्यापक संदर्भ में जीवनपर्यंत चलता है, लेकिन स्कूली शिक्षा में सीखना एक विशेष संदर्भ रखता है। स्कूली शिक्षा के दौरान इंसान जो भी सीखता है, वह उसके शेष सीखने को भी निर्देशित कर सकता है। इसके साथ, एक जटिल और विसंगत समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप और समरस समाज की रचना के लिए आवश्यक समझ दे पाने की क्षमता भी पारिवारिक स्तर पर संभवत: मुश्किल है। हरेक

अभिभावक चाहता है कि उसके बच्चे का बेहतर सामाजीकरण हो और साथ ही उसे भावी नागरिक या बेहतर इंसान बनने के लिए कुछ ज्ञान, कौशल व मूल्य-शिक्षा भी मिले, इसे संभव बनाने के लिए समाज ने शिक्षा के साझे दायित्व को 'विद्यालय' या 'स्कूल' नामक संस्था को सौंपा है। पाठ्यचर्या का विचार सीखने के इसी सांस्थानिक स्वरूप से संबद्ध है।

सामाजीकरण और स्कूली शिक्षा

समाज में रहते हुए व्यक्ति जिन चीजों को सीखता है उसे सामाजीकरण से सीखना कहते हैं। यह प्रक्रिया आदिम समाजों से ही जारी है। समाज में प्रचलित विश्वास, मान्यताएँ, रीति-रिवाज़, सामाजिक भूमिकाएँ, स्थानीय ज्ञान, आपसी व्यवहार के कायदे एवं बहुत से कौशल व्यक्ति इसी प्रक्रिया से सीख लेता है। सामाजीकरण के साथ स्कूल का संबंध द्वंद्वात्मक है। अनेक बार स्कूली शिक्षा इस प्रक्रिया में योगदान कर सकती है, लेकिन यह भी संभव है कि स्कूल या (स्कूली) शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया से अर्जित ज्ञान व बोध पर सवालिया निशान लगाकर, नए तरह से सीखने को प्रेरित करे। उदाहरण के लिए, हमें समाज से पता चलता है कि ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना की है, लेकिन शिक्षा के माध्यम से हम सृष्टि की उत्पत्ति की अलग ही कहानी पढ़ते हैं।

समाज के द्वारा स्कूल को शिक्षा की सौंपी गई ज़िम्मेदारी, समाज में प्रचलित ज्ञान, विश्वास व रीति-रिवाज़ मात्र में निपुण कर देने भर की नहीं है। समाज में प्रचलित इन चीज़ों का शिक्षा के बुनियादी मूल्यों या लक्ष्यों से विरोध भी तो हो सकता है। उदाहरणस्वरूप, भारतीय समाज में जातिगत एवं जेंडर (स्त्री-पुरुष के बीच की) असमानता और तज्जनित भेदभाव, शोषण व उत्पीड़न सदियों से कायम रहे हैं और बहुधा वे सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य की हैसियत भी रखते देखे गए हैं। उन पर सवाल खड़े करना और समतामूलक समाज की दिशा में परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करना क्या शिक्षा का दायित्व नहीं है? समाज में शिक्षा की परिवर्तनकारी भूमिका भी तो है, जो होनी भी चाहिए। शिक्षा का एक दायित्व सिर्फ़ अर्जित नए ज्ञान को नयी पीढ़ी तक पहुँचाना मात्र नहीं है, बल्कि पुराने के प्रति आलोचनात्मक होना भी सिखाना है।

8.1.1 पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री का विश्लेषण

आज अपने चारों ओर मौजूद जिस 'शिक्षा-व्यवस्था' से हम मुखातिब होते रहे हैं, वह अपनी प्रक्रिया और लक्ष्यों के संदर्भ में जिसके प्रति सबसे अधिक प्रतिबद्ध होने का ढिंढोरा पीटती है (यानी विद्यार्थी), उस प्रक्रिया के निर्धारण व संचालन में उसी की कोई सहभागिता नज़र नहीं आती, बल्कि कहना तो यह चाहिए कि उस व्यवस्था में शिक्षा का सबसे मूलभूत लक्ष्य— विद्यार्थी के भीतर बीज-रूप में निहित स्वतंत्रता, विवेक, संवेदनशीलता और

सृजनात्मकता को अभिव्यक्त करना, उन्हें पल्लवित-पुष्पित करना आदि— ही सिरे से गायब दिखते हैं। वह विद्यार्थी के विशिष्ट व्यक्तित्व, उसकी सोच और सृजनात्मक शक्ति को केंद्र में रखकर उसके अनुसार स्कूल व उसकी व्यवस्था को ढालने की बजाय, उन्हें उपेक्षित व दमित करते हुए, स्कूल के प्रायोजक या संसाधनदाता के प्रयोजनों के अनुरूप विद्यार्थी को ही ढालने की कवायद करती नज़र आती है। उसके द्वारा उपलब्ध करायी जा रही शिक्षा में पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों को विकसित करने की पद्धतियाँ परीक्षा-प्रणाली के पैटर्न और उसकी ज़रूरतों पर आधारित होती हैं, न कि शिक्षा के लक्ष्य, अधिगम की ज़रूरतों एवं बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक या क्षेत्रीय परिवेश जैसी मिश्रित कसौटियों पर। इसी से, आज अधिकतर विद्यालयों की शिक्षा-व्यवस्था के सबसे प्रकट लक्षण होते हैं— नीरस दिनचर्या, थके-ऊबे और टाइम पास कर रहे शिक्षक/शिक्षिका तथा रट्टू तोते से अपने कंठ के ताल को मिला रहे और बोर हो रहे विद्यार्थी।

यदि 'पाठ्यचर्या' का सारा ज़ोर पढ़ाई की योजना, समय व अंक तथा पाठ्यक्रम पर ही हो और उसमें शिक्षा के लक्ष्य ही अनुपस्थित या अस्पष्ट हों अथवा शिक्षाशास्त्र व ज्ञान पर उसका नज़रिया भी सुपरिभाषित न हो, तो कहना नहीं होगा कि ऐसी पाठ्यचर्या किसी काम की नहीं। केवल अधिगम के सिद्धांत से 'पाठ्यचर्या' नहीं बन जाती।

हमारे देश के शैक्षिक वातावरण में 'पाठ्यचर्या' *(Curriculum)* शब्द बहुत ही अस्पष्ट और उलझा हुआ शब्द है। इसे लेकर अकादमिक जगत और शैक्षिक आयोगों व रपटों में जो विचार-विमर्श हुआ है, उनमें समझ के कम-से-कम दो छोर विकसित दिखाई देते हैं। एक ओर यह केवल कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विषयों और उनके अंतर्गत आने वाली विषय-वस्तुओं की सूची के रूप में दिखलायी जाती है, तो दूसरी ओर यह विद्यालय के बाहर और भीतर एक समग्र अनुभव उपलब्ध करने वाली किसी चीज़ की तरह आकार लेती है। इन दो भिन्न छोरों के बीच जो अनेकानेक स्थितियाँ संभव हैं, उनमें 'पाठ्यचर्या' के विभिन्न परिप्रेक्ष्य उभरकर सामने आ सकते हैं।

'पाठ्यचर्या' शैक्षिक उद्देश्यों को क्रियान्वित करने की योजना होती है। वह अमूर्त व अवधारणात्मक संरचना है, न कि 'कक्षा में क्या करना है?' का विवरण। 'पाठ्यचर्या' की 'रूपरेखा' उसी अमूर्त का एक विवेचनात्मक/पुस्तकीय स्वरूप में मूर्तीकरण है, जिसमें यह भी अंकित रह सकता है कि पाठ्यचर्या क्या है? इसके निर्धारण के समय किन चीज़ों पर, किस तरह से विचार करना चाहिए? उसमें पाठयचर्या-निर्धारण के क्रम में केंद्रीकरण या विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति अपनाने के पक्ष-विपक्ष में भी तर्क या सफ़ाई दी जा सकती है। 'रूपरेखा' में कक्षा में क्या करना या नहीं करना है, आदि का भी विवरण हो सकता है। इनके अलावा, पाठ्यचर्या के समस्त विचार-मंथन, विमर्श व निष्कर्ष उसमें अंकित होते हैं। संक्षेप में, 'पाठ्यचर्या की रूपरेखा' में मुख्यत: शिक्षा की समझ; सीखने-सिखाने की समझ और विद्यालय-आधारित कार्यक्रमों का समावेश रहता है।

‘पाठ्यक्रम’ का निर्धारण ‘पाठ्यचर्या’ के परिणामस्वरूप और उसी के आधार पर होता है। किसी कक्षा में विषय-वस्तु के संदर्भ में क्या पढ़ाया जाए और (स्तरीकृत कक्षायी परिवेश के सापेक्ष) स्तर-विशिष्ट उद्देश्यों के मद्देनज़र किस तरह के ज्ञान, कौशल और अभिवृत्तियों को खास बढ़ावा दिया जाए— इसी का विवरण ‘पाठ्यक्रम’ है।

‘पाठ्यसामग्री’, जिनमें पुस्तक एक महत्वपूर्ण सामग्री है, का विकास ‘पाठ्यक्रम’ और ‘पाठ्यचर्या’ की आधारभूमि पर होता है। शैक्षिक लक्ष्यों को फलीभूत करने का सबसे प्रत्यक्ष और कारगर ज़रिया ‘पाठ्यसामग्री’ को ही समझा जाता है।

> इस प्रकार का सीखना क्यों ज़रूरी समझा गया और यह किन उद्देश्यों की पूर्ति करेगा। यह योजना विशेष स्तरों के उद्देश्यों को अलग-अलग परिभाषित करेगी कि कौन-सी पाठ्यसामग्री किस स्तर पर पढ़ाई जाए और किस प्रकार उसका संचालन हो। यह शिक्षा-प्रणाली के सामान्य सिद्धांत और परीक्षण, योग्यता का आधार तथा बेहतर शिक्षण-सामग्री की भी सिफ़ारिश करती है।
>
> पाठ्यचर्या को सही रूप से योजनाबद्ध गतिविधियों का समूह समझा जाता है, जिनकी रचना कुछ खास शैक्षिक उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए हो—उद्देश्यों का एक ऐसा समूह जिसमें शामिल हैं, विषय-वस्तु के लिहाज़ से क्या पढ़ाया जाए और ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्ति जिन्हें खासतौर से बढ़ावा मिले, विषय-वस्तु को चुनने के आधार के कथन एवं तरीकों का चुनाव, सामग्री एवं मूल्यांकन।
>
> —राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र 2.3
> *(पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें)*, एन.सी.ई.आर.टी., दिल्ली

पाठ्यचर्या

विद्यार्थियों को क्या सिखाया जाए, क्यों सिखाया जाए, सिखाने के लिए जिसे चुना गया उसके चयन के बुनियादी सिद्धांत, मान्यताएँ और कारण क्या हैं?— इन सभी सवालों के जवाब पाठ्यचर्या की अवधारणा में समाहित होते हैं। इसे एक उदाहरण के माध्यम से समझने की कोशिश करते हैं। मान लीजिए यह कहा जाए कि आरंभिक कक्षाओं में बच्चों को गणित पढ़ाया जाना चाहिए। तो सवाल आता है कि गणित क्यों पढ़ाया जाना चाहिए? गणित के शिक्षण से बच्चे में कौन-सी काबिलियतें विकसित होंगी? ये काबिलियतें एक इंसान के लिए क्यों ज़रूरी हैं? इससे बच्चों में किन क्षमताओं, दृष्टिकोण और अभिवृत्तियों का विकास होगा? क्या आरंभिक स्तर के बच्चों को गणित सिखाया जाना चाहिए?

कक्षावार या बच्चों को स्तरवार गणित सिखाने के क्या चरण होंगे या स्तरवार अवधारणाओं का क्रम क्या होगा? वे ही अवधारणाएँ क्यों सिखाई जानी चाहिए?— आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों के लिए समझना आवश्यक है, लेकिन पाठ्यचर्या के संदर्भ-सवालों की यह शृंखला यहीं खत्म नहीं होती। ये सवाल इससे आगे भी जाते हैं। बच्चों को सिखाने के लिए जो भी चुना है, उन्हें सिखाया कैसे जाएगा, यानी सिखाने के तरीके या विधियाँ क्या होंगी? वे ही विधियाँ क्यों होंगी? बच्चों को किन स्थितियों में पढ़ाया जाएगा? इन्हें पढ़ाने वाले व्यक्ति से किस तरह की क्षमताओं और समझ की अपेक्षा होगी? पढ़ाने के लिए जो भी तय किया गया है उसे पढ़ाने के लिए किस तरह की सामग्री प्रयोग में लाई जाएगी? किस तरह से इसका मूल्यांकन किया जाएगा? इन सभी प्रश्नों पर पाठ्यचर्या निर्माताओं को जवाब देना होता है। यदि संक्षेप में कहें तो पाठ्यचर्या 'स्कूल को क्या करना चाहिए, क्यों करना चाहिए और कैसे करना चाहिए?' आदि समस्याओं के बारे में दिशा-निर्देशित करने वाले सिद्धांतों, मान्यताओं की एक सुविचारित अवधारणा होती है। स्कूली पाठ्यचर्या से यह अपेक्षा की जाती है कि वह बच्चों में ज्ञान, क्षमताओं, कौशलों और अभिवृत्तियों का विकास करने में मदद करे जो पूरी तरह बौद्धिक ही नहीं हों, बल्कि सामाजिक, नैतिक, भावनात्मक और व्यावहारिक भी हों।

पाठ्यक्रम

एक बार शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण हो जाने के बाद उन उद्देश्यों को किस तरह प्राप्त किया जाना है, इसे समझना होता है। मान लीजिए, *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* यह कहती है कि ज्ञान तथा दुनिया की समझ के साथ दूसरे लोगों की भावनाओं व कल्याण के प्रति संवेदनशीलता का विकास करना शिक्षा का उद्देश्य है। तो क्या यह उद्देश्य एक बार में पूरा हो जाएगा या इसे स्कूली शिक्षा में अनेक स्तरों पर फैलाकर हासिल किया जाना होगा। ज्ञान तथा दुनिया की समझ किसी एक तरह के कार्य को समझ लेने से तो होने वाली नहीं है। यह समझ तमाम अन्य दुनियावी/सामाजिक समझ से बनेगी, अत: इसके लिए हमें इसे साल-दर-साल फैलाकर ही अर्जित करना होगा। अर्थात् इसे यदि कक्षा मॉडल में बात करें तो हरेक कक्षा में फैलाकर अर्जित करना होगा। इसीलिए हम देख सकते हैं कि जो अवधारणाएँ कक्षा एक में आती हैं, कक्षा दो में उससे आगे की अवधारणाओं पर काम होता है और यह सिलसिला लगातार चलता रहता है। इसका मतलब है कि शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यावहारिक योजना बनाते हैं तो उन्हें बच्चों की आयु के अनुसार हासिल किए जाने के लिए नियोजित करना होता है। यही नियोजन पाठ्यक्रम की अवधारणा को जन्म देता है। पाठ्यक्रम की अवधारणा स्तरवार इन्हीं लक्ष्यों को प्राप्त करने

की एक योजना होती है। पाठ्यक्रम हमें स्कूली शिक्षा में समग्रता में प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्यों के साथ ही उसे स्तरवार लक्ष्यों में बाँटकर दिखाता है। उदाहरण के लिए, कक्षा पाँच तक हम क्या हासिल करना चाहते हैं? फिर उच्च प्राथमिक स्तर पर क्या और माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर क्या हासिल करना चाहते हैं? पाठ्यक्रम इससे अधिक विस्तार में कक्षावार भी चर्चा करता है कि पहली कक्षा में क्या और दूसरी तथा तीसरी में क्या सिखाना है। इस मायने में यह स्तरवार क्षमताओं की सूची और उसके लिए विषय-वस्तु का सुझाव होता है। इसे एक उदाहरण के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

हम सभी जानते हैं कि भाषा के पाठ्यक्रम में हम बहुत ही बुनियादी कौशल (पढ़ना और लिखना) सिखाने की बात करते हैं। अब पढ़ने का कौशल किसी एक बिंदु पर पूरा तो हो नहीं जाता। इसलिए पढ़ने की क्षमता के विकास के लिए यह तय किया जाता है कि आरंभ में बच्चों को वर्णमाला सिखाएँ और फिर धीरे-धीरे सरल और सार्थक शब्दों से पढ़ने का अभ्यास करवाएँ। इसके बाद हम उसे थोड़ी-थोड़ी जटिल पाठ्यसामग्री की ओर ले जाते हैं। वैसे पढ़ना सिखाने की यह क्रमिक विधि परंपरागत सोच पर आधारित है। नये शोध और सूझ के आलोक में कोई ज़रूरी नहीं कि बच्चे को पहले वर्णमाला ही सिखलायी जाएगी। उसके पढ़ने की कवायद सार्थक शब्दों/वाक्यों से शुरू कराके वर्णमाला से उसे आखिर में परिचय कराने का काम भी किया जा सकता है।

पढ़ने की क्षमता का उत्तरोत्तर विकास कक्षावार तय किया जाता है। कोई भी अध्यापक/अध्यापिका एकदम से बच्चों को निबंध या वयस्कों की कहानी-कविता नहीं दे देते। ऐसी स्थिति में हरेक पाठ्यचर्या निर्देशित करती है कि बच्चों को सरलता से जटिलता की ओर ले जाया जाए। पाठ्यक्रम इसी पढ़ या लिख पाने की क्षमता के विस्तार को व्यावहारिक धरातल पर नियोजित करता है।

यहाँ कोई भी पूछ सकता है कि बच्चों को पढ़ना-लिखना क्यों सिखाया जाना चाहिए? इस सवाल का जवाब अनेक तरह से दिया जा सकता है। कोई कह सकता है कि पढ़ना-लिखना सीखने से बच्चा दूसरों के द्वारा लिखी गई चीज़े पढ़ सकता है और लिखकर अपने विचार व्यक्त कर सकता है। दूसरा जवाब हो सकता है कि बच्चे पढ़ना-लिखना सीखकर सीखने में स्वायत्त हो जाएँगे और वे अन्य क्षेत्रों में भी ज्ञान अर्जित करने में सक्षम हो जाएँगे।

इस कार्य में एक हद तक सीखने का मनोविज्ञान मदद कर सकता है कि किस स्तर पर बच्चे क्या सीख सकते हैं और विषय-वस्तु को किस क्रम में नियोजित किया जाए ताकि बच्चे आसानी से सीख सकें। किस तरह के अनुभव बच्चों को किस स्तर पर दिए जा सकते हैं इत्यादि। मनोविज्ञान, बच्चों की रुचि इत्यादि के बारे में भी निर्देशित कर सकता है जो कि पाठ्यक्रम के नियोजन में मददगार हो सकता है।

पाठ्यसामग्री (शिक्षण-अधिगम सामग्री)

शिक्षा में काम करने वाले बहुत से लोग सुझाते हैं कि पाठ्यसामग्री को किसी पाठ्यपुस्तक से बाँधकर देखने से शिक्षक उसी सामग्री से बँधकर रह जाता है। एन.सी.ई.आर.टी. का पाठ्यचर्या-दस्तावेज़ एवं पाठ्यक्रम यह सुझाता है कि शिक्षा को पाठ्यपुस्तकों के बाहर जाना चाहिए। इसका आशय है कि शिक्षक/शिक्षिकाएँ सिर्फ़ पाठ्यपुस्तकों से बँधकर नहीं रहें, बल्कि वे बच्चों को दूसरी सामग्री और बाहरी दुनिया से अंतरक्रिया के अवसर उपलब्ध करवाएँ, इसीलिए पाठ्यक्रम में एक पुस्तकालय को विकसित करने का सुझाव दिया गया है। यह सामग्री विविधतापूर्ण और स्थानीय स्तर पर विकसित की गई भी हो सकती है।

विद्यार्थियों से जो कुछ जानने-सीखने की अपेक्षाएँ की जाती हैं, उन सबका सुविधाजनक संकलन पाठ्यपुस्तक है। आजकल प्राय: हर स्कूल की कक्षा की कार्य-शैली पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर है, जिससे उनका महत्व व दायरा ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ गया है। जबकि आवश्यकता केवल एक पुस्तक या अकेले केवल पुस्तक की ही नहीं, बल्कि पाठ्यपुस्तक सहित शिक्षण-अधिगम-सामग्री के एक पूरे पैकेज की है, जो बच्चे को सक्रिय शैक्षिक व पाठ्य-सहगामी गतिविधियों में संलग्न रखे। यह पैकेज शिक्षण-सहायक सामग्रियों व अभ्यास-गतिविधियों से लैस होगा। सभी तरह के गुणवत्तापूर्ण उपादानों से भरे ऐसे पैकेज बड़ी संख्या में होने चाहिए, जिससे अलग-अलग क्षेत्रों व परिवेशों के स्कूलों एवं अध्यापक-अध्यापिकाओं के लिए चयन के अनेकानेक विकल्प उपलब्ध हो सकें।

राष्ट्रीय शैक्षिक प्रशिक्षण और अनुसंधान परिषद् का पाठ्यक्रम-दस्तावेज़ पाठ्यसामग्री के बारे में सुझाता है कि रचनाओं के चयन में इन बातों का ध्यान रखा जाएगा कि वे रोचक और बच्चों के अपने परिवेश से जुड़ी हुई हों। उनमें पर्यावरण संबंधी ज्ञान और चिंता समाहित हो। वे जेंडर-समानता, शांति और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकसित करने वाली हों। कार्य और श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने वाली हों, कलात्मक दृष्टि निर्मित करने और मूल्य-चेतना जगाने में सहायक हों। पाठ कुछ पूर्वनिर्धारित संदेशों को पहुँचाने के मकसद से गढ़े नहीं जाएँ। पाठ हमउम्र विद्यार्थियों के सपनों, उम्मीदों, आशंकाओं और उनकी विस्तृत हो रही दुनिया के संदर्भ में प्रामाणिक प्रतीत होना चाहिए। ज़रूरी है कि अलग-अलग अनुभव क्षेत्रों से जुड़े लोगों के लिखे पाठ चुने जाएँ। पाठों के चयन में 'महानता' शर्त नहीं है। शुचिता से अधिक संवेदना की सच्चाई पर ध्यान देना चाहिए।

केंद्रिक पाठ्यचर्या

पाठ्यचर्या का केंद्रीय अंश, जो अपने अपरिवर्तित स्वरूप में शेष अंशों को धारण करता है तथा जिसका महत्व स्थायी होता है, वह 'केंद्रिक पाठ्यचर्या' *(Core-curriculum)* कहलाता है।

'केंद्रिक पाठ्यचर्या' की अवधारणा को परमाणु के मॉडल से समझा जा सकता है। किसी परमाणु के अंतर्गत, केंद्रक या नाभिक *(Core)* में न्यूट्रॉन व प्रोटॉन होते हैं। वे आपस में संतुलित व स्थिर रहकर परमाणु को एक स्थिर-सा स्वरूप प्रदान करते हैं, परंतु परमाणु के बाहरी हिस्से में यह स्थिरता नहीं रहती— वहाँ विविध कक्षाओं में चक्कर काटते इलेक्ट्रॉन होते हैं, जो अपना स्थान, संख्या आदि के साथ स्वरूप भी बदलते रहते हैं। इसी से तुलनीय है पाठ्यचर्या का ढाँचा। उसका भी कुछ कोर या केंद्रीय हिस्सा होता है। चाहे समय या जगह कितना भी बदल जाए, परंतु वह हिस्सा पाठ्यचर्या के हर संस्करण में अंतर्विष्ट रहता ही है। उसी का बाह्य या स्थानीय विस्तार होता है, पाठ्यचर्या का शेष ढाँचा। जैसे— किसी भी विषय की पढ़ाई का मसला हो, पर सबमें शिक्षा के मूलभूत उद्देश्य और कुछ प्रविधियाँ तो समान ही रहेंगी। हाँ, स्थानीय रूप से भी कुछ और उद्देश्य और प्रविधियाँ बन जाएँगी। मूलभूत उद्देश्य और प्रविधियाँ 'केंद्रिक पाठ्यचर्या' के अंतर्गत होती हैं। इसी तरह, भाषा और गणित सिखलाना किसी भी पढ़ाई का आधारभूत ढाँचा है। आजकल देखा यह जा रहा है कि निजी शिक्षण-संस्थानों में पाठ्यचर्या का 'कोर' (शिक्षा के लक्ष्य आदि) ही गायब रहता है, क्योंकि उनका सारा ज़ोर पैसा कमाने पर होता है, जिसके चलते वे शिक्षा व ज्ञान को एक उत्पाद के रूप में बेचने के कारखाने की शक्ल लिए रहते हैं।

'केंद्रिक पाठ्यचर्या' की अवधारणा भी सापेक्ष चीज़ है। यह भी समय व संदर्भ से अप्रभावित नहीं रहती। जैसे विज्ञान के शिक्षण के संदर्भ में समझा जा सकता है कि भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान आदि केंद्रिक विषय हैं। 'जैव-भौतिकी', 'जैव-रसायन', 'जैव-प्रौद्योगिकी', 'कंप्यूटर विज्ञान' आदि इसी केंद्रिक के सामयिक विस्तार हैं। इसी तरह, 'हिंदी भाषा और साहित्य' जैसा कोई विषय यदि केंद्रिक है, तो आजकल जो 'प्रयोजनमूलक हिंदी' नामक विषय उभरकर आ चुका है, वह उसी का विस्तार है। कल हो सकता है कि इसी तरह के कुछ और नये विषय उभरकर सामने आ जाएँ।

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री का अंत:संबंध

'पाठ्यचर्या' और 'पाठ्यक्रम' में पूर्वापर जैसा कालक्रमिक संबंध भी है और परस्पर-संवादी व सतत-संवादी संबंध भी है, जिसके कारण एक-दूसरे के प्रभाव से इन दोनों के स्वरूप में सतत लचीलेपन की संभावना बनी रहती है। यही संबंध इन दोनों के साथ 'पाठ्यसामग्री' का भी है।

एक उदाहरण से इस संबंध का स्पष्टीकरण

विश्लेषण	स्वरूप	उदाहरण के तौरपर (विषय-वस्तु)
पाठ्यचर्या	अमूर्त अवधारणात्मक	लोकतंत्र के स्वरूप (समानता, स्वतंत्रता, बंधुता), अलग-अलग स्तर, ऐतिहासिक महत्व व समकालीन प्रासंगिकता, लागू करने के तरीकों व कार्य-योजना, उसकी राह में कठिनाइयों या उसपर आ रहे ख़तरों, उसके भविष्य आदि पर विचार-मंथन।
पाठ्यक्रम	मूर्त विवरणात्मक	परिवार में लोकतंत्र के दर्शन को प्रतिष्ठित करना।
पाठ्यसामग्री (पाठ्यपुस्तक आदि)	मूर्त विवरणात्मक व विश्लेषणात्मक	लड़के व लड़की के बीच अधिकार व कार्यों की समानता तथा उनमें स्वतंत्र चेतना के विकास हेतु लागू की जा रहीं तमाम कार्य-योजनाएँ (जैसे— उन्हें समान रूप से रसोई और घर की सफ़ाई सिखलाना, उन्हें समान रूप से दूध, किताब और बॉल देना आदि)।

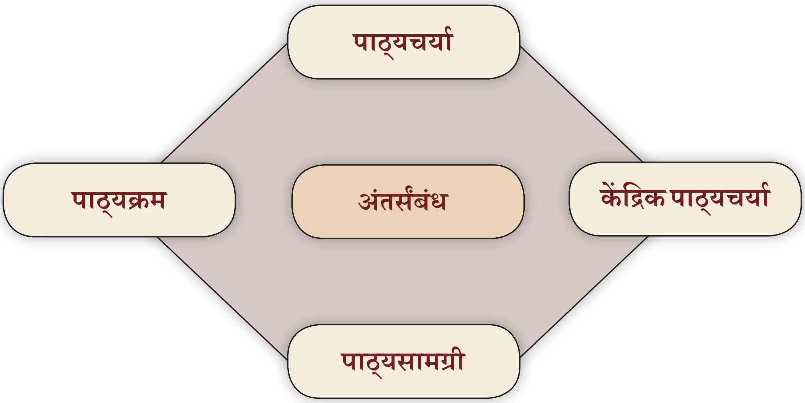

शिक्षा के उद्देश्य

हमारे देश में निर्मित *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* शिक्षा के उद्देश्यों का एक संदर्भ हमें देती है। उसके अनुसार शिक्षा के उद्देश्य हैं—

- लोकतंत्र (समानता, स्वतंत्रता, बंधुता), राजनैतिक-सामाजिक व आर्थिक न्याय, सेक्युलर सोच जैसे मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता
- मानवीय गरिमा व अधिकार, दूसरे के प्रति आदर-भावना
- दूसरे लोगों की भावनाओं व कल्याण के प्रति संवेदनशीलता एवं परोपकार
- मस्तिष्क की स्वायत्तता (तार्किक आलोचनात्मक दृष्टिकोण), विचार तथा क्रिया की आज़ादी
- ज्ञान तथा दुनिया की समझ
- सीखने के लिए सीखना, जो सीखा है उसे छोड़ने की और दुबारा सीखने की तत्परता
- शिक्षा को काम करने, आर्थिक प्रक्रियाओं व सामाजिक बदलाव में भागीदारी में हिस्सा लेने की सामर्थ्य विकसित करना चाहिए
- सहकारिता की भावना (दूसरों के साथ मिलकर काम करना)
- सौंदर्य व कला के विभिन्न रूपों को समझना व उनका आनंद उठाना

ऊपर शिक्षा के जो सामान्य उद्देश्य उल्लेखित हैं, उनके मद्देनज़र विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या के अलग-अलग उद्देश्यों के निर्धारण व वर्गीकरण की ज़रूरत है। विद्यार्थी की उम्र, उसके विकास की अवस्थाएँ, उसकी बौद्धिक-मानसिक अवस्था, उसके सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक परिवेश की विभिन्नता, पाठ्यचर्या के विषय-क्षेत्र के संबंध में ज्ञान की प्रकृति की विभिन्नता आदि से अलग-अलग स्तर बन जाते हैं। पाठ्यचर्या के उद्देश्यों का निर्धारण शिक्षा के सामान्य लक्ष्यों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए, पर अंतिम अवस्था में इन्हें राज्यों व ज़िलों के हरेक स्कूल में विद्यार्थियों व अध्यापक-अध्यापिकाओं की ज़रूरत के अनुसार चिह्नित व पुनर्गठित किया जाना चाहिए।

8.1.2 पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री का अंतर्संबंध

हमने अभी तक पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री पर अलग-अलग चर्चा की है, लेकिन इन तीनों के बीच एक गहरा अंतर्संबंध होता है। यदि पाठ्यचर्या बच्चे के स्वयं के विवेक से निर्णय लेने की क्षमता के विकास की बात करती है या दूसरों के प्रति संवेदनशीलता की बात करती है तो पाठ्यसामग्री ऐसी नहीं हो सकती जो बच्चों को सोचने के अवसर न दे या वह ऐसी नहीं हो सकती जो दूसरों के प्रति संकीर्ण नज़रिया अपनाने के लिए तैयार करे।

इसलिए जहाँ पाठ्यसामग्री शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन है तो वहीं वह बच्चों के स्तर आदि के अनुसार भी होनी चाहिए। उसमें चयन के स्तर पर विविधता होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, भाषा की पाठ्यसामग्री में विभिन्न विधाओं का परिचय होना चाहिए। इन विधाओं के ज़रिये हिंदी के वे सब रूप हों तो कई भाषा और शैली विकसित करने की चुनौती पेश करते हैं।

आदर्श पाठ्यचर्या के अपेक्षित गुण

- पाठ्यचर्या में शिक्षाशास्त्र व ज्ञान पर सुस्पष्ट, सुपरिभाषित दृष्टि और अंतदृष्टि होनी चाहिए— उसकी आधारशिला के रूप में शिक्षा के उद्देश्य होते हैं।
- विविधता— पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में विषय-संबंधी विविधता लाने वाली पाठ्यचर्या अच्छी होती है।
- लचीलापन— पाठ्यचर्या में समय, कक्षा-स्तर, शिक्षालय के परिवेश, विद्यार्थियों की उम्र व व्यक्तिगत परिस्थिति, आस-पास के समाज आदि के संदर्भ में बदल सकने और उचित रूप में ढल पाने की क्षमता होनी चाहिए।
- विकेंद्रीकरण— स्थानीयता के अनुरूप पाठ्यचर्या के अलग-अलग संस्करण हों, न कि पूरे देश या संसार में एक ही पाठ्यचर्या चले।
- बहुवैकल्पिकता— पाठ्यचर्या ऐसी हो, जो अध्यापक-अध्यापिका व विद्यार्थी को पाठ्यक्रम, पाठ्य-सामग्रियों व शिक्षण-विधि के संदर्भ में ज़्यादा संख्या में और बेहतर विकल्प उपलब्ध कराए।
- अनुभव-केंद्रित— अधिगम तब होता है जब पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु विद्यार्थियों के अनुभवों और सांस्कृतिक ज्ञान के संदर्भ में प्रासंगिक हो।
- परस्पर-संबद्धता— शिक्षा के सरोकार, लक्ष्य और पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु में गहन संबंध सुनिश्चित होना चाहिए। इसके साथ, पाठ्यक्रमों, पाठ्य विषयों व पाठय-सामग्रियों के भी (आंतरिक व बाह्य तल पर) आपसी संबंध और क्रमबद्धता अपेक्षित है।
- किसी भी पाठ्यचर्या में एक संतुलित संख्या में पाठ्य-सहगामी गतिविधियों का समावेश होना चाहिए।
- समग्र तथा सतत मूल्यांकन, अध्यापक व विद्यार्थी द्वारा पारस्परिक मूल्यांकन के साथ उनमें स्वमूल्यांकन की प्रवृत्ति का विकास होना चाहिए।
- अध्यापक-अध्यापिका व विद्यार्थी का मज़बूत और आत्मीय संबंध सुनिश्चित करना।
- ज्ञान की रचना में विद्यार्थियों की भी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने वाली पाठ्यचर्या होनी चाहिए।

खोज, आविष्कार और नवाचार

जैसे-जैसे कक्षा का स्तर बढ़ता जाए, विद्यार्थियों को 'खोज' (*Discovery*), 'आविष्कार' (*Invention*) और 'नवाचार' (*Innovation*) की अवधारणाओं से परिचित होना चाहिए, भले इनकी परिभाषाओं से बहुत आगे चलकर वे अवगत हों। पहले से मौजूद, लेकिन लोक की दृष्टि से ओझल वस्तु या विचार का उद्घाटन कर उसे सबके सामने लाना 'खोज' है। एकदम किसी नयी वस्तु या विचार की रचना करना या उसे सबके सामने ला देना 'आविष्कार' है। किसी खोजे गए या आविष्कृत वस्तु व विचार का परिशोधन व नव-प्रकल्पन कर उसे नये व अधिक उपयोगी रूप में ला देना 'नवाचार' है। उदाहरणस्वरूप, इतिहास में खुदाई से जो सामने आता है, वह 'खोज' है, इसी तरह विज्ञान में गुरुत्वाकर्षण भी 'खोज' है— कार, कंप्यूटर या टेलीफ़ोन 'आविष्कार' हैं—नये मॉडल और नयी तकनीक के साथ किसी नयी कार, लैपटॉप या सेल्यूलर फ़ोन का निर्माण 'नवाचार' है। 'खोज', 'आविष्कार' और 'नवाचार' की पहचान और इनमें विभेद करने की क्षमता होनी इसलिए ज़रूरी है, क्योंकि उक्त चीज़ों से विद्यार्थी रोज़ मुखातिब होते हैं। इसी तरह इतिहास, साहित्य, विज्ञान (उसमें भी भौतिकी, रसायन-शास्त्र, जीवविज्ञान) आदि के बीच के विभेद की पहचान होनी चाहिए। विद्यार्थियों को यह पहचान अवलोकन और गतिविधियों से करानी चाहिए, न कि विवेचन से। पहचान के उपरांत, उन्हें 'खुद से विवेचन' की ओर उन्मुख कराना चाहिए।

संदर्भ के सापेक्ष पाठ्यसामग्री के स्वरूप में बदलाव

किताब/पाठ्यसामग्री के यांत्रिक स्वरूप को यथावत् रखते हुए भी क्लास में जाएँ, तो भी क्लास तक जाते-जाते उसका पाठ बदल जाता है, उद्देश्य, स्तर, सामाजिक परिदृश्य, उम्र, समाज व राजनीति से आ रहे आंदोलन-परिवर्तन, अनुसंधान आदि भी पाठ को बदलते हैं, इससे बदल रही पाठ-सामग्री भी सिलेबस को बदलने पर ज़ोर डालने लगती है। फिर, बदला हुआ 'सिलेबस' पाठ्यचर्या को भी प्रभावित करता है।

ज्ञान के क्षेत्र में नित नये शोध या अनुसंधान होने और सामाजिक-राजनैतिक कशमकश या आंदोलनों के नित नये उभारों के चलते, हर ज्ञान व बोध पुराना पड़ता जाता है, जिससे किसी खास समय में तैयार की गई किताबें या शेष पाठ्य-सामग्रियाँ आगे आने वाले समय में आउट-डेटेड हो जाती हैं। इसलिए, समय-समय पर पाठ्य-सामग्रियों का पुनरीक्षण और तदनुसार उसमें आवश्यकतानुसार, यथासंभव व यथोचित सुधार होते रहना चाहिए। कुछ-कुछ समयावधि पर तो उनमें आंशिक संशोधन से काम चल जाता है, पर बड़े समयांतराल पर उनका आमूल-चूल परिवर्तन अथवा पुनर्निर्मित पुस्तकों/सामग्रियों से उनका विस्थापन अनिवार्य हो उठता है।

पाठ्यपुस्तकें दो तरह से पुरानी पड़ सकती हैं—

1. वर्ण्य विषय-वस्तु के अनुपस्थित या अप्रासंगिक हो जाने अथवा उसकी जगह किसी नयी चीज़ के आ जाने से, जैसे— बच्चे को वर्णमाला सिखाने वाली किताब कभी वर्णमाला से भाषा की पढ़ाई की शुरुआत करती थी, अब संदर्भ में भाषा की पढ़ाई।

2. भाषा के पुरानी पड़ जाने से/सामयिक मुद्दों के आने से, जैसे— जिन किताबों में स्त्री के लिए अबला, रमणी आदि शब्द प्रयुक्त हुए थे, वे आज के दौर में बदलते विमर्श के आलोक में अप्रासंगिक हो चुके हैं।

पाठ्यचर्या का विकेंद्रीकरण और बहुवैकल्पिकता

'यशपाल समिति' (2009) ने भारत के बहुलतावादी स्वरूप के संदर्भ में, भिन्न-भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक व भौगोलिक क्षेत्रों के लिए अलग-अलग पाठ्यचर्या की ज़रूरत पर बल दिया है। 'समिति' ने उसके विकास में राष्ट्रीय या राज्यस्तरीय संस्थाओं की अपेक्षा स्थानीय भागीदारी व स्वामित्व अधिक सुनिश्चित करने की पुरज़ोर वकालत की है, परंतु, एक बड़ा सवाल यह है कि इसका भारत की राष्ट्रीय अस्मिता, एकात्मकता और सामाजिक संस्कृति के स्वरूप पर कहीं विपरीत प्रभाव न पड़े, इसलिए देश के सारे भागों में न्यूनतम मानकों या केंद्रिक पाठ्यचर्या का पालन किया जाना चाहिए।

एक ही 'पाठ्यचर्या' से संबंधित कई तरह के 'पाठ्यक्रम' बनाए जा सकते हैं और बनाए जाने भी चाहिए, लेकिन उनकी रचना में सबसे ज़रूरी चीज़ केंद्रिक पाठ्यचर्या का खयाल रखना है, पर उसे स्तर और स्थानीयता के सापेक्ष ढालकर ही 'पाठ्यक्रम' बनाने चाहिए। अगर ऐसा नहीं होगा, तो स्थिति बड़ी विचित्र और हास्यास्पद हो जाएगी। जैसे— विद्यार्थी को '1857 की क्रांति' या 'फ़्रांस की क्रांति' का तो पता होगा, पर अपने ही ज़िले में बीस साल पहले हुआ किसान-आंदोलन उसकी जानकारी में नहीं होगा। उसे 'ताजमहल' या 'स्टेच्यू ऑफ़ लिबर्टी' का तो पता होगा, पर अपने शहर में चौक पर लगी किसी मूर्ति का पता नहीं होगा। उन्हें राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय भाषा के बारे में पता तो होगा, परंतु अपनी स्थानीय भाषा (जिसमें वे सोचते-बोलते या आस-पास के माहौल को गतिमान देखते हैं) के बारे में या उसके महत्व का पता नहीं होगा। आजकल देखा यह जाता है कि बच्चों की भाषा-साहित्य की किताबों (या बाल-पत्रिकाओं) में चित्रित घटना या चरित्र शहरी मध्यवर्ग के जीवन को संबोधित होते हैं। पाठ्यपुस्तक का यह चरित्र बहुत ही असमावेशी है।

पाठ्यपुस्तकों की रचना में विकेंद्रीकरण (स्थानीयता) के बढ़ने से उनका स्तर भी गिरने का खतरा बढ़ जाता है। तैयारी व निर्माण में शोध की कमी तथा उनकी रचना में उच्चस्तरीय विद्वानों की अरुचि या सहभागिता न ली जाने के चलते पाठ्यपुस्तकों की गुणवत्ता कुप्रभावित होती है। इसके लिए एक रास्ता है, राष्ट्रीय मानकों का खयाल रखते हुए ही पाठ्यपुस्तकें बनाई जाएँ।

इस समस्या का एक सरल उपाय है— भाषा-साहित्य-शिक्षण को छोड़कर बाकी सभी विषय मानकता का खयाल रखकर बनाए जाएँ, उनकी या तो केंद्रीय स्तर पर तैयारी हो अथवा उनके मानदंड केंद्रीय हों। इतिहास-भूगोल के राज्य-ज़िला संस्करण बनने चाहिए, पर यह सुनिश्चित होना चाहिए कि उनके तथ्य राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मानकों पर परीक्षित व सत्यापित हों। गणित-विज्ञान जैसे विषयों में स्थानीय विभिन्नता की ज़्यादा गुंजाइश तो है नहीं, फिर भी स्थानीय परिवेश विज्ञान की पुस्तक में भी आए तो बेहतर है। पाठ्यचर्या में भौगोलिक रूप से छोटी-सी जगह, स्थानीय महत्व के व्यक्ति, स्थानीय लेखक, स्थानीय घटना, स्थानीय स्तर पर विज्ञान की खोज या स्थानीय वैज्ञानिक, स्थानीय भाषा का विवेचन, उसका साहित्य आदि भी आ पाएँ तो बेहतर है, पर इस स्थानीयता का समावेश बढ़ते हुए कक्षा-स्तर के अनुपात में घटते भी जाना चाहिए, क्योंकि हमारा लक्ष्य विद्यार्थी की जीवन-दृष्टि को स्थानीयता से प्रांतीयता, फिर राष्ट्रीयता से गुज़ारते हुए विश्वस्तरीय बनाना है, लोकल से ग्लोबल की ओर... क्रमश:।

एक और खतरा है राजनीति का। अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग सरकारें हो सकती हैं, जिनकी राजनैतिक-सांस्कृतिक दृष्टियाँ भी अलग-अलग हो सकती हैं। उसके परिणामस्वरूप, विद्यालयों के लिए (केंद्रिक पाठ्यचर्या' को पूरी तरह ताक पर रखकर) वे अलग-अलग तरह की पाठ्यचर्याएँ तैयार करके, उनमें अलग-अलग इतिहास-भूगोल-समाजशास्त्र आदि रख सकती हैं। इस क्रम में कोई सरकार ज्योतिष-कर्मकांड-तंत्र-मंत्र-भूतविद्या आदि भी पाठ्यचर्या में रख सकती है, तो कोई विज्ञान को भी उससे बाहर कर सकती है। ऐसा इकहरा और प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण समाज में वर्ण-भेद/जाति-प्रथा व अंधविश्वास को एक नयी मज़बूती प्रदान करते हुए, एक खास सामाजिक समूह को लाभ पहुँचाने की कवायद के सिवा क्या है? इतिहास और इतिहास-दृष्टि के अलगाव से भारत की सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय अखंडता पर कुठाराघात हो सकता है। साहित्य की किताबों में भी महान् व्यक्तियों की जीवनी आदि चुनते समय संपादकों पर सामाजिक-सांस्कृतिक व राजनैतिक पूर्वाग्रह हावी रह सकते हैं। (जैसे— ज्योतिबा फुले बहुत समय तक महापुरुषों या समाज-सुधारकों में न गिने गए न किसी किताब में उन्हें जगह दी गई।) साहित्य में एक समस्या यह भी है कि किस लेखक या किन लेखकों के पाठ पढ़ाए जाएँ?

यह बात बहुत निष्पक्ष होकर नहीं हो पाती है। पाठ्यपुस्तकों का चुनाव या पाठ-संचयन की तैयारी, इन सबसे शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य ही भटक जाता है।

पाठ्यचर्या का निर्धारण या विकास करते समय यह भी ध्यातव्य है कि विविध सांस्कृतिक व सामाजिक पृष्ठभूमियों से आने वाले विद्यार्थियों के लिए शिक्षा के दर्शन में जो स्थानीय स्तर पर अलगाव होना चाहिए, उसे पाठ्यचर्या संबोधित कर सके।

पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों के अनुरूप ढालना

जब हम स्कूल में पढ़ रहे थे और आज जब हम स्कूल में पढ़ाने को उन्मुख हैं, तब से लेकर अबतक पढ़ने और सोचने-समझने के अनेक दौरों या चरणों से हम गुज़र चुके हैं। स्कूल में पढ़ाई के दौरान हम अकसर इन सवालों से रू-ब-रू होते रहे हैं—

- खेलने-कूदने, गाने या चित्रकारी जैसे मनोरंजक कार्यों के रहते हुए भी, हमें पढ़ने के लिए क्यों बाध्य किया जाता है ?
- ज़रूरी क्यों? फिर, स्कूल में भी समय-तालिका के अनुसार क्यों पढ़ाई होती है? वहाँ भी, प्रार्थना-सभा *(Assembly)* क्यों कराई जाती है ?
- हम जो विषय पढ़ रहे होते हैं या जो हमें पढ़ाया जा रहा है— उसका कोई मतलब, उद्देश्य या प्रयोजन भी है?
- उसका हमारे भावी जीवन या भविष्य-निर्माण में कोई योगदान है? है, तो क्या है?
- हमें अलग-अलग विषय (साहित्य, गणित, इतिहास, विज्ञान आदि) अलग-अलग तरीके से क्यों पढ़ाया जाता है?
- हमें खेलना-कूदना, चित्रकारी, गाना आदि (यानी, पाठ्य-सहगामी गतिविधियाँ) जब इतना अधिक भाते हैं, तो उनके लिए कक्षा की समय-तालिका में एक-दो कालांश *(Period)* ही क्यों होते हैं, जब कि जो विषय हमें अरुचिकर लगते हैं, उनके लिए बहुत अधिक कालांश क्यों हैं?
- हमारी रुचि जब किसी खास विषय में अधिक होती है, तब भी हमें ढेर सारे विषय क्यों पढ़ने पड़ते हैं?
- अध्ययन की एक खास अवधि के बाद हर बार हमें परीक्षा से क्यों गुज़रना पड़ता है? क्या परीक्षा के बिना हमारी पढ़ाई नहीं हो सकती?
- हमें जो विषय खास तरह से या खास किताब के द्वारा या उसके आधार पर पढ़ाया जाता है, उसे भी तो किसी ने बनाया होगा? बनाने वाला क्या सही सलामत दिमाग का होगा? क्या वह गलत भी हो सकता है? फिर, यदि वह गलत निकला तो हमारी पढ़ाई का क्या होगा?

ये कुछ बुनियादी सवाल हैं, जो स्कूली शिक्षा के दौरान हम में से कई लोगों के ज़ेहन में अनायास जगते रहते हैं। जब हम स्कूली-जीवन पार कर आगे बढ़ चुके होते हैं, तो हमारे लिए सवालों के स्वरूप कुछ बदल जाते हैं, जैसे—

- कक्षा के विभिन्न स्तरों (प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर-माध्यमिक आदि) का निर्धारण किस आधार पर, किस तरह से किया जाता है ?
- पढ़ाई के लिए, विषय *(Subject)* और विषय-वस्तु *(Subject-matter content)* के निर्धारण के आधार क्या हैं ? किसी कक्षा में या किसी स्तर पर क्या पढ़ाया जाए, इसे तय करने के क्या आधार हैं? किसी विषय-विशेष के अंतर्गत जो विषय-वस्तु चुनी गई, उनके अलावा या उन्हें छोड़कर दूसरी क्यों नहीं चुनी गयी? (उदाहरणस्वरूप, 'हिंदी-साहित्य' विषय के पाठ्यक्रम में प्रेमचंद, निराला, प्रसाद, महादेवी आदि को ही क्यों लिया गया, आज के किसी एकदम नये रचनाकार की या अखबार में छपी किसी कविता या बच्चे के हाथ लिखी गई कहानी का समावेश पाठ्यक्रम में क्यों नहीं किया गया?)
- शिक्षण-विधि का निर्धारण किस तरह से होता है? वह सामान्य रूप से तय होता है या किसी कक्षा-विशेष, विषय-विशेष या पाठ-विशेष से जोड़कर वह निर्धारित किया जाता है?
- विद्यार्थियों ने जो सीखा है, उसे जाँचने की आवश्यकता क्यों है? परीक्षण व मूल्यांकन के जो तरीके हैं, वे कितने सही हैं? उनसे क्या पता चल पाता है? क्या वे पर्याप्त हैं?
- इन सवालों पर विचार करना इसलिए ज़रूरी है कि उससे जो कुछ सामने आएगा, वह पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों के स्तर तक ले जाने या उसे उनके अनुरूप ढालने में मददगार होगा।

पाठ्यचर्या की संरचना में ही इतना लचीलापन होना चाहिए कि कक्षा-स्तर, कक्षा के परिवेश, आस-पास के समाज, विद्यार्थियों की उम्र और उनके सामाजिक-आर्थिक-बौद्धिक व मानसिक स्तर के हिसाब से पाठ्यक्रम खुद-ब-खुद अनुकूलित हो सके। हमें उन साधनों का रचनात्मक उपयोग बढ़ाना चाहिए, जो हमारे पास पहले से हैं। साथ ही, हमें उन नये साधनों का उपयोग भी करना चाहिए, जो कम पैसे में ज़्यादा लोगों के काम आ सकें।

वैसे तो हर बच्चे के बौद्धिक और भावनात्मक स्तर (*I.Q.* और *E.Q.*) में कुछ-न-कुछ जन्म से ही अंतर होता है, पर यह अंतर भी लालन-पालन के अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक व घरेलू परिवेश आदि के आधार पर पुन:निर्धारित होता है। परिवेश उसे कम या अधिक करने अथवा उसे अन्य दिशा में मोड़ने में अपनी बड़ी भूमिका निभाता है। परिणामस्वरूप, हर बच्चा दूसरे से अलग होता है। किसी समाज में सभी बच्चों की औसत

क्षमता का आकलन करके उसके आधार पर एक 'सामान्य पाठ्यचर्या' और 'सामान्य पाठ्यक्रम' बनाए जाते हैं, पर उसमें विशिष्ट विद्यार्थियों के लिए भी जगह होनी चाहिए। इसके साथ, कई शोध यह बतलाते हैं कि हर बच्चे में कुछ न कुछ विशिष्टता होती है। स्कूल में शिक्षक/शिक्षिका का यह कर्त्तव्य है कि वे विभिन्न शैक्षणिक और पाठ्य-सहगामी *(Co-curricular)* गतिविधियाँ करवाकर विद्यार्थी की विशिष्टता को पहचानें और तद्नुसार अन्य गतिविधियाँ करवाएँ। किसी पाठ्यक्रम के आधार पर शिक्षण-कार्य करते हुए विभिन्न क्षमताओं वाले विद्यार्थियों का खयाल रखते हुए, अध्यापक/अध्यापिका को एक ऐसी सामान्य शिक्षण-विधि की खोज करनी होती है, जो सबको बराबरी के स्तर पर संबोधित करे।

एक निश्चित कक्षा-स्तर तक (हो सकता है वह आठवीं या दसवीं हो), सारे विद्यार्थियों को सामान्य पाठ्यक्रम और गतिविधियों में संलग्न रखना चाहिए, जिसमें सारे आधारभूत विषय और पाठ्य-सहगामी क्रियाकलाप समाविष्ट हों। इस दौरान किसी/किन्हीं खास क्षेत्र/क्षेत्रों में उनकी रुचि स्पष्ट या गति विकसित हो चुकी होती है, जिसकी पहचान की जानी चाहिए। उसके बाद, विद्यालय का यह दायित्व बनता है कि भावी जीवन में आगे बढ़ने के लिए या उनके अपने मन-माफ़िक या तद्नुरूप उपयोगी क्षेत्र में गतिमान होने के लिए, उन्हें परामर्श और निर्देशन दिया जाए। हर स्कूल में इस दायित्व का संपादन करने वाले/वाली अध्यापकों/अध्यापिकाओं की उपलब्धता होनी चाहिए।

गतिविधियों की रचनात्मक भूमिका

अध्यापन से जुड़े बहुत से लोग मानते हैं कि हमें कार्यों को तब तक नहीं करना चाहिए, जब तक हमने उन्हें करना सीख न लिया हो, जब कि असलियत यह है कि हम चीज़ों को करके ही सीखते हैं। जिस तरह बिना पानी में उतरे हम तैरना नहीं सीख सकते, उसी तरह बिना अभ्यास व गतिविधियों के सरोवर में गोते लगाए हम पढ़ाई के मर्म को नहीं पा सकते।

> *Show me and I forget,*
> *Teach me and I remember,*
> *Involve me and I learn.*
> — Benjamin Franklin

कक्षा में शिक्षक/शिक्षिका द्वारा केवल भाषण व विवेचन के ज़रिये पढ़ाना विद्यार्थियों को कभी-कभी सूखे चने चबाने जैसा अनुभव कराता है, जिससे वे शिक्षण-प्रक्रिया में अपने को भागीदार नहीं महसूस कर पाते। परिणामत:, वे उसके या पढ़ाये जा रहे विषय के प्रति उदासीन होने लगते हैं। उसकी जगह विविध वाचिक (प्रश्नोत्तर) या दृश्य-श्रव्य गतिविधियों में उन्हें ले जाकर पढ़ाया जाए, तो सीखना उनके

लिए न केवल सरस व रुचिकर हो जाता है, बल्कि उनके सीखने की गति भी बढ़ जाती है। गतिविधियाँ पाठ या शिक्षण-सामग्री को विद्यार्थियों के अनुरूप ढालने में भी मददगार होती हैं। सबसे बड़ी बात जो होती है, वह यह कि वे गतिविधियों की सहायता से किसी चीज़ को अपने अनुभव से और क्रमबद्ध रूप में सीखते हैं, जिससे उसको रट लेने के स्थान पर उसे 'समझने' की जगह उनके दिमाग में बनती है। इससे किसी ज्ञान को 'केवल परीक्षा तक सिर पर लादे रखने और बाद में उसे बेताबी से उतार फेंकने' की बजाय, उसे हृदयंगम करने की प्रवृत्ति उनमें विकसित होती है। इससे सीखा गया ज्ञान उनकी चेतना व बोध का स्थायी भाग बन जाता है, जो तरह-तरह से जीवन में काम आता है।

> जिन चीज़ों को हम गलती से 'ज्ञान का भंडार', 'सीखने के क्षेत्र', 'अकादमिक विषय' या 'स्कूली विषय' के रूप में देखते हैं, वे संज्ञाएँ नहीं, बल्कि क्रियाएँ हैं। ये ऐसी चीज़ें नहीं हैं, जो कहीं स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में हैं, बल्कि ये वे चीज़ें हैं, जिन्हें लोग करते हैं। ..... ज्ञान ज़िन्दा लोगों के दिमाग में एक प्रक्रिया है। हम कौन हैं और कहाँ हैं और हमारे आस-पास क्या चल रहा है, इसे जानने की कोशिश में हम जो कुछ करते हैं, वही ज्ञान है।
>
> — जॉन हॉल्ट, *शिक्षा की बजाय*, अनुवादक – सुशील जोशी, पृष्ठ–15

गतिविधियों की भूमिका मूल्यांकन के दौरान भी दृष्टिगोचर होती है। केवल लिखित या नपे-तुले शब्दों में आकार लेने वाले उत्तरों के अपेक्षी प्रश्नों से विद्यार्थियों की आभासी क्षमता (रटे हुए ज्ञान) का पता चलता है, जब कि गतिविधि-आधारित परीक्षण व मूल्यांकन उनकी वास्तविक क्षमता की थाह लेने में मददगार होते हैं।

गतिविधियों और अभ्यास-सामग्रियों की रचना के लिए यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि वे विषय-आधारित और पाठ से संबंधित तो हों ही, परंतु उन्हें हर हाल में कुछ रचनात्मक भी होना चाहिए। अर्थात्, उनके पैर भले विषय या पाठ की ज़मीन पर मज़बूती से खड़े हों, पर दृष्टि पाठ से बाहर की ओर भी हो, जिससे वे पाठ को उसकी बद्ध सीमा का अतिक्रमण कर व्यापक समाज से जोड़ने के साधन बनें। जैसे— एन.सी.ई.आर.टी. से प्रकाशित पाठ्यपुस्तक *आरोह* (12 वीं कक्षा) में तुलसीदास की *कवितावली* से गृहीत जो पाठ रखा गया है, उसमें चित्रित उनके समय में हुई भयंकर भुखमरी में लोगों द्वारा अपने बेटे-बेटी तक को बेच डालने का ज़िक्र है। इस पाठ पर कुछ इस तरह के अभ्यासों व गतिविधियों का निर्माण किया जा सकता है— 'भुखमरी की भीषण समस्या के संदर्भ में तुलसी के युग से आज के युग की तुलना करें और आज के समय में भुखमरी में या धन के लालच में लोगों

द्वारा अपनी संतानों (खासकर बेटियों) को बेचने के आँकड़े इकट्ठे करें', फिर उस समस्या के कारणों पर कक्षा में परिचर्चा का आयोजन करें। गतिविधियों का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे वे विद्यार्थियों की स्मृति व सोच का विकास कर सकें तथा उनमें समूह में कार्य करने की प्रवृत्ति जगा सकें।

अभ्यास और गतिविधियों की रचना के समय यह भी विचारणीय है कि उनका स्वरूप कुछ ऐसा हो जिससे सीखने की प्रक्रिया में अनुभव का महत्व रेखांकित हो। साथ ही, उनसे विद्यार्थियों की वैसी समझ बने, जिससे वे अपने ज्ञान की रचना खुद कर सकें और ज्ञान के शोध व रचना में उनकी भी सक्रिय भागीदारी का महत्व रेखांकित हो। गतिविधियाँ और अभ्यास ऐसे होने चाहिए, जिनमें विद्यार्थी की पहचान, सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक संदर्भ तथा समकालीन चुनौतियाँ भी संबोधित हों — जिनसे अध्यापक-अध्यापिका और विद्यार्थी का सशक्त, आत्मीय और रचनात्मक संबंध बने तथा अभिभावकों और शेष समाज की भी भूमिका जिनमें परिलक्षित हो।

रटंत प्रणाली को हतोत्साहित करने के लिए उपाय

1. **शिक्षण-प्रणाली में सुधार —**
   - (क) करो और सीखो— अभ्यास/गतिविधियों में इज़ाफा
   - (ख) नये-नये तरीकों, प्रविधियों के अनुसंधान द्वारा शिक्षण
   - (ग) दृश्य-श्रव्य माध्यमों की सहायता से पढ़ाना
   - (घ) अंतरक्रियाओं को बढ़ावा देना
2. **परीक्षण व मूल्यांकन की प्रणाली में सुधार** — वर्तमान में परीक्षण और मूल्यांकन की जो विधि या प्रक्रिया हर जगह प्रचलित है, वह बेहतर व सार्थक जीवन की रचना करने में शिक्षा की अपेक्षित भूमिका को लक्ष्यीभूत करके नहीं चलती। वह विद्यार्थियों की बहुत सीमित योग्यताओं का आकलन कर पाती है और उनकी निजी क्षमताओं के विकास को वास्तविक रूप में प्रस्तुत कर पाने में कतई सक्षम नहीं है।

विद्यार्थियों को परीक्षा और मूल्यांकन का डर दिखाए बिना, पुनरवलोकन और सुधार के अवसर लगातार उपलब्ध कराने चाहिए। उनके सीखने के परिणामों का ही नहीं, सीखने के अनुभव का भी परीक्षण व मूल्यांकन होते रहना चाहिए, यानी सत्र के अंत में या किन्हीं निश्चित अवधियों पर लिखित परीक्षा लेने की जगह, वर्षभर अर्थात् सतत परीक्षण व मूल्यांकन करते रहना चाहिए। उनमें खुद से भी अपने अधिगम के अनुभवों को परखने की आदत डालनी चाहिए— स्व-आकलन और स्व-मूल्यांकन। स्व-मूल्यांकन की प्रवृत्ति विद्यार्थी में ही नहीं, बल्कि शिक्षक में तो सबसे पहले विकसित होना चाहिए। यह व्यक्तिगत रूप से भी होना चाहिए और एक समूह के हिस्से के रूप में भी।

> मान लीजिए, एक छह साल का बच्चा आप से पूछे कि ज़ेट हवाई जहाज़ कैसे काम करता है? ... तब उसे आप यह चीज़ कैसे समझाएँगे? ... क्या आप उससे यह कहेंगे कि पहले उसे छह या दस साल तक भौतिकी नाम का विषय पढ़ना होगा, उसके बाद ही वह पता लगा सकेगा। ... शायद आप लगभग वही कहेंगे जो मैं कहूँगा। जैसे— इस तरह की कोई बात कि ज़ेट हवाई जहाज़ उड़ता है, क्योंकि उसमें से पीछे की ओर ढेर सारी गर्म हवा फेंकी जाती है, जो उसे आगे धकेलती है। ठीक उसी तरह जैसे गुब्बारे में हवा भरकर छोड़ देने पर वह कमरे में फुदकता है। इस तरह का उत्तर उस समय तो शायद चल जाए, इससे बच्चे की समझ में एक खाली स्थान की पूर्ति हो जाएगी और उसे आगे सोचने और काम करने का मसाला मिल जाएगा। कुछ ही समय बाद शायद वह यह पूछेगा– हवा गर्म कैसे हो जाती है? या, हवा को पीछे की ओर फेंका कैसे जाता है? तब हम कोशिश करेंगे कि बच्चे के इन सवालों का अच्छे से अच्छा जवाब उसके परिचित उदाहरणों की मदद से दें, परंतु यह कहना कि ज़ेट हवाई जहाज़ के बारे में जानने से पहले उसे भौतिक शास्त्र सीखना पड़ेगा, लगभग वैसा ही है, जैसे हम उससे कहें कि किसी शब्द का उच्चारण व अर्थ जानने से पहले उसे पूरी बारहखड़ी, मात्राएँ, संयुक्ताक्षर वगैरह सब सीखने पड़ेंगे। इस तरह की सलाह देकर हम उसे उसकी मंशा, उसके मकसद से काटकर एक लंबे चक्करदार रास्ते पर डाल देंगे। हमने चीज़ों को उलटे क्रम में रख दिया है। भौतिकशास्त्र बच्चे को जेट इंजन तक नहीं ले जाएगा, लेकिन ज़ेट इंजन के बारे में कौतूहल उसे भौतिकशास्त्र तक ज़रूर ले जाएगा।
>
> —जॉन हॉल्ट *शिक्षा की बजाय*, पृष्ठ संख्या – 89–90, एकलव्य, भोपाल

मूल्यांकन का विषय केवल पढ़ाई-लिखाई या अधिगम नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों का समग्र मूल्यांकन होना चाहिए, यानी उनके व्यक्तित्व के सभी आयामों का परीक्षण व मूल्यांकन, जैसे— बोलचाल/भाषा, उठना-बैठना, रुचि, विषय-ज्ञान, व्यक्तिगत और व्यवहार, खेल-कूद और कला में भागीदारी आदि सब इस दायरे में आने चाहिए। मूल्यांकन का यह स्वरूप किसी भी पाठ्यचर्या के आधारभूत ढाँचे में होना अपेक्षित है।

मूल्यांकन कोई एक-तरफ़ा क्रिया नहीं हो, बल्कि वह द्वि-आयामी बने

1. विद्यार्थियो के सीखने का मूल्यांकन

(क) शिक्षक/शिक्षिका द्वारा

(ख) सहपाठियों द्वारा

(ग) समाज-परिवार द्वारा

(घ) खुद से (स्व-मूल्यांकन)

2. शिक्षक (शिक्षण-प्रक्रिया) का मूल्यांकन

(क) विद्यार्थियों द्वारा

(ख) सहकर्मियों द्वारा

(ग) स्कूल/संस्थान द्वारा

(घ) अभिभावकों/समाज द्वारा

(ङ) खुद से (स्व-मूल्यांकन)

> मैं अभी भी एक बच्चा हूँ, जो समुद्र के किनारे रेत से खेलते हुए कंकड़ियाँ चुन रहा हूँ और मेरे सामने ज्ञान का अथाह समुद्र है, जो अभी तक अनुद्घाटित पड़ा है।
>
> — न्यूटन
>
> एक शिक्षक/शिक्षिका सही अर्थों में तब तक शिक्षा नहीं दे सकता/सकती, जब तक कि वह स्वयं निरंतर विद्यार्थी न हो।
>
> — रवींद्रनाथ ठाकुर
>
> अपने कर्म-व्यवसाय तथा दायित्वों को खोजने में विद्यालयों को बच्चों की सहायता करनी चाहिए न कि केवल तथ्यों से तथा तकनीकी ज्ञान से उनके मस्तिष्क को भर देना चाहिए। विद्यालय की भूमिका ऐसी होनी चाहिए, जहाँ वे निडर होकर, आनंदपूर्वक, समन्वित रूप में अपना विकास कर सकें।
>
> — जे. कृष्णमूर्ति

शोधकर्ता के रूप में शिक्षक

यह अवधारणा जॉन डिवी द्वारा प्रतिष्ठित 'आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र' से जन्मी है, जो 'शिक्षा संस्कृति का स्थानांतरण है' इसके विरोध में विकसित हुआ है। शिक्षण के संदर्भ में शोध का विचार इन दो दिशाओं में होना चाहिए—

1. शिक्षण के तकनीकी पक्ष से संबंधित
2. शिक्षण की विषय-वस्तु से संबंधित

तकनीकी पक्ष का तात्पर्य किसी कक्षा में पढ़ाई जाने वाले 'पाठ' के बाह्य ढाँचे और उसके लिए अपनायी जाने वाली कक्षायी प्रक्रिया के स्वरूप से संबंधित पहलुओं से है। पढ़ाने की पूरी प्रक्रिया को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है — (1) पढ़ाने से पहले, (2) पढ़ाने के दौरान (3) पढ़ाने के बाद

1. पढ़ाने से पहले

शिक्षक/शिक्षिका को सबसे पहले क्या और कितना पढ़ाना है?, क्यों या किसलिए पढ़ाना है? का विश्लेषण करते हैं, फिर वह किस स्तर पर या कहाँ पढ़ाने जा रहे हैं? (विद्यार्थियों के सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक संदर्भ का ध्यान) — का विश्लेषण करते हैं, फिर उसके अनुसार 'कैसे या किस तकनीक से पढ़ाना है?' का निर्धारण करते हैं। इसके बाद, वह इसका निर्धारण करते है कि कैसे जानेंगे कि विद्यार्थी ने कितना सीखा? यानी, परीक्षण-मूल्यांकन की विधि तय करना। ये सब पूर्व-तैयारी में आते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि शिक्षक/शिक्षिका को कक्षा में जाने के पहले से सोच-विचार और शोध की गहरी प्रक्रिया से गुज़रना होता है। पढ़ाने के दौरान वह विद्यार्थियों के साथ मिलकर उपलब्ध ज्ञान व उसकी संप्रेषण-तकनीक को नया आकार दे रहा होता/रही होती है, यानी प्रतिपल कुछ नया शोध कर रहा होता/रही होती है। 'कैसे पढ़ाना है?' के तहत, पाठ पर विचार करना अथवा ज्ञान-संप्रेषण या अपने कल्पित वक्तव्य-वस्तु को मन ही मन या कागज़ पर व्यवस्थित करना भी एक तरह का शोध ही है, फिर भी कहना होगा कि पाठ को कक्षा में ले जाने की शिक्षक/शिक्षिका की जो तैयारी होगी, वह सिर्फ़ कक्षा तक पहुँचने में उसकी मदद करेगी, इसके बाद तो कक्षा की ज़रूरतों के अनुसार उसे वह खुद बदल लेगा/लेगी या कक्षा उसे बदल देगी।

2. पढ़ाने के दौरान

पढ़ाने के दौरान यह ध्यान रखना होता है कि विषय, कक्षा-स्तर और विद्यार्थियों की मानसिक अवस्था (मूड) क्या है? पूर्व-तैयारी के बावजूद, इन कारणों से कभी अध्यापन-कार्य अपेक्षित फल देने वाला नहीं सिद्ध हो पाता, इसलिए पढ़ाने के दौरान अपनी अध्यापन-विधि को विद्यार्थियों के अनुकूल बनाना पड़ता है। एक ही कक्षा में अलग-अलग सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक-क्षेत्रीय-भाषायी और मानसिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थी होते हैं। शिक्षक/शिक्षिका को उनके स्तर पर जाकर पढ़ाने के लिए, एक औसत कार्य-योजना और औसत शिक्षण-विधि का अनुसंधान करना होता है। अध्यापक-अध्यापिका को भाषा और बोध के उस स्तर पर जाकर विद्यार्थियों को समझाना होता है, फिर उन्हें वहाँ से निकालकर उच्चतर बोध व विमर्शों में ले जाना होता है। सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की जब तक सक्रिय भागीदारी न हो, तब तक सफ़ल शिक्षण संभव नहीं। इसे सुनिश्चित करने का बड़ा दायित्व शिक्षक/शिक्षिका का होता है, जिसके लिए उसे शोधकर्ता की भूमिका में आना पड़ता है।

3. पढ़ाने के बाद

कई बार ऐसा होता है कि अध्यापक/अध्यापिका कक्षा में सफ़ल नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति में, उन्हें कक्षा से लौटकर आत्म-विश्लेषण करना चाहिए कि मेरा अध्यापन-कार्य किस

कारण से विफ़ल हुआ या अपेक्षित फलदायी सिद्ध नहीं हो सका? उदाहरणस्वरूप, यदि किसी शिक्षक/शिक्षिका ने कक्षा में सावित्रीबाई फुले की जीवनी पढ़ाई, लेकिन उस दौरान विद्यार्थी केवल बोर होते रहे, तब वैसी स्थिति में शिक्षक/शिक्षिका को उसका कारण अपने भीतर ढूँढ़ना चाहिए। हो सकता है कि उसे यह महसूस हो कि 'मेरा पढ़ाने का तरीका ही सही नहीं था। मैंने जीवनी को भाषण-जैसा कह सुनाया, जिससे पाठ-प्रक्रिया में, मैं विद्यार्थियों को भागीदार न बना सका/सकी।' यह महसूस होने पर, संभव है कि आगे ऐसे किसी पाठ में उसे पढ़ाने का अपना तरीका बदलने की सूझ मिले और यदि अध्यापक/अध्यापिका का पढ़ाना सफ़ल हुआ है, तो भी उसे आत्म-शोध करना चाहिए कि उसे सफ़ल बनाने वाले कारक कौन-से थे? इससे उसे यह सूझ मिलेगी कि किन कारकों में मात्रात्मक व गुणात्मक वृद्धि करने से अध्यापन-कार्य की सफ़लता में मात्रात्मक व गुणात्मक रूप से वृद्धि होगी?

8.1.3 शिक्षण की विषय-वस्तु से संबद्ध शोध

ऊपर के विवेचन से हम यह समझ चुके हैं कि बेहतर शिक्षक/शिक्षिका वही है, जिसके अंदर शोध की प्रवृत्ति कार्यरत हो। वह यदि उपलब्ध ज्ञान को ही कक्षा के माध्यम से अग्रसारित करे, पर नये-नये तरीकों या प्रविधियों की खोज करके वैसा करे, तो भी वह शोध है, लेकिन वह पाठ के तकनीकी पक्ष से संबद्ध शोध है। साहित्य की शिक्षा के क्रम में शिक्षक/शिक्षिका जब किसी पाठ के यांत्रिक स्वरूप को लेकर कक्षा में जाता/जाती है, तो उस परिवेश में पड़कर, वह एक पाठ हर एक के लिए अपने तरह का अपना-अपना पाठ बनकर, अनेकरूप हो जाता है। खुद शिक्षक/शिक्षिका के लिए वह वही नहीं रहता, जो कक्षा में जाने के पूर्व था। इसी प्रक्रिया में साहित्य के अनेकानेक अर्थ फूटते हैं।

'लकीर का फ़कीर' न बनकर हर समय नया प्रयोग करने को तत्पर होना तो शिक्षक/शिक्षिका की मूल चेतना ही है, पर यहाँ शोध के दूसरे धरातल की बात की जा रही है। उस पर जाने के लिए यह ध्यातव्य है कि शोध अपने-आप में कोई शुद्ध या पवित्र चीज़ नहीं है, बल्कि उसके पीछे की नीयत, उद्देश्य या उपयोग की प्रकृति से ही उसकी अच्छाई-बुराई निर्धारित होती है। समाज के दु:ख-दर्द से बेपरवाह होकर केवल ज्ञान के गगन में विहार करने वाला अथवा समाज के सत्ता-समीकरण में शोषक की तरफ़ करवट लेने वाला शोध किसी लक्ष्य तक नहीं पहुँचाता, अत: बेहतर शिक्षक/शिक्षिका वही है, जो एक प्रगतिशील भूमिका में होता/होती है, जिसके तहत वह किसी पाठ को कक्षा में ले जाने के पूर्व उस पर पर्याप्त विचार-मंथन करके ज्ञान व बोध के संदर्भ में कुछ नवीन आशय तथा कुछ अग्रगामी सामाजिक अर्थ निकाल लेता/लेती है— उस पाठ के गहरे सामाजिक-राजनैतिक विश्लेषण के ज़रिये वह समाज की दबी-कुचली व अंधकार-ग्रस्त जनता और हताश लोगों में विद्रोह

की चिंगारी भरकर उनके लिए आशा के अवसर उद्घाटित करता/करती है, चाहे उसके मार्ग में लाख बाधाएँ आएँ। इसके लिए वह शोधकर्ता या अनुसंधाता की भूमिका अख्तियार करता/करती है।

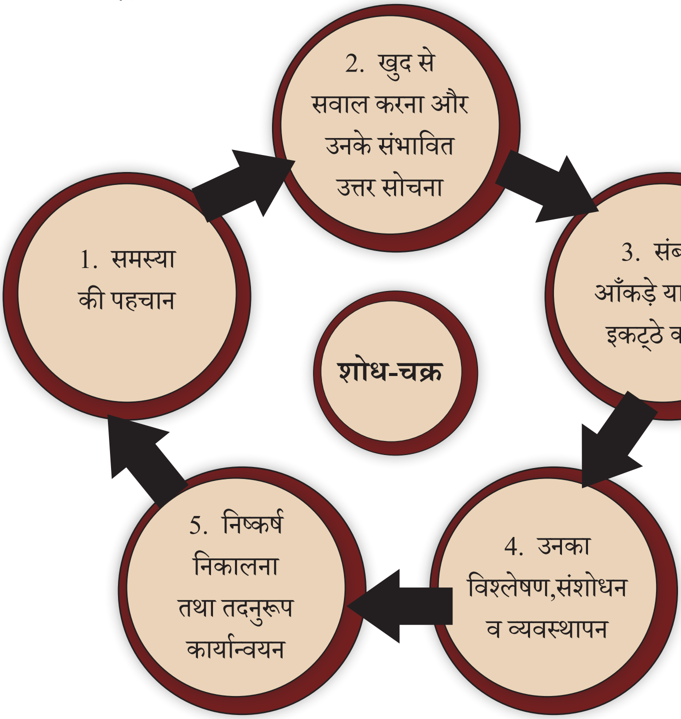

- शिक्षक/शिक्षिका अपने को समाज से थोड़ा-सा अलग रखकर तैयार करता/करती है, फिर भी वह समाज के कुछ संस्कारों से संलिप्त रह सकता/सकती है। विद्यार्थी समाज से सीधे आया होता है— उसके संस्कार लेकर, पर कुछ स्वतंत्र सोच, समाज व खुद के भीतर से आए कुछ सवालों एवं कई तरह की सक्रियताओं से लबरेज भी रहता है, यानी कक्षा के लिए केवल शिक्षक नहीं, विद्यार्थी भी सक्रिय पात्र है। कक्षा में दोनों एक-दूसरे से मुखातिब होते हैं, उनके बीच अंतरसंवाद होता है। शिक्षक/शिक्षिका कक्षा में ज्ञान का जो पाठ लेकर जाते हैं, उन्हें कक्षा के परिवेश या विद्यार्थियों से नयी चुनौतियाँ मिलती हैं।
- ज्ञान की दिशा में कुछ नया सोचने और शोध की प्रक्रिया में विद्यार्थी को समर्थ बनाने और उसके लिए माकूल माहौल रचने में अध्यापक/अध्यापिका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भूमिका निभा सकता/सकती है। वह सीधे चिंतन व विश्लेषण करने हेतु उन्हें प्रेरित करके अथवा उन्हें प्रश्नों व प्रतिवादों से घेरते हुए ऐसी स्थितियों में डाल सकता/सकती है, जिसमें वे खुद-ब-खुद सोचने-खोजने को विवश हो जाएँ। वह विद्यार्थियों के साथ लोकतांत्रिक माहौल में चर्चा-परिचर्चा तथा उनके साथ अंतरक्रिया करते हुए,

उनके भीतर तर्क-शक्ति और असहमति का विवेक व साहस जगाते हुए, उन्हें स्वतंत्र रूप से चिंतन करने को प्रोत्साहित कर सकता/सकती है।

पाठ को व्यापक संदर्भ में रखकर पढ़ाना

किसी विषय का कोई पाठ हो, उसे पढ़ते-पढ़ाते वक्त उसे उसी विषय या पाठ के संदर्भ में सीमित रखें, तो यह ठीक से पढ़ना नहीं हुआ। उदाहरणस्वरूप, अगर हमें भाषा व साहित्य पढ़ना-पढ़ाना है, तो इसका यह मतलब नहीं कि हमें साहित्येतर विषयों (इतिहास, राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र या वर्तमान जीवन की घटनाओं) में रुचि या गति नहीं रखनी चाहिए। साहित्य क्या है? सरल शब्दों में कहें, तो वह जीवन की कथा या सभ्यता-समीक्षा है। क्या जीवन की किसी घटना-परिघटना को उसके सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि संदर्भों से काट कर समझा जा सकता है? जीवन को प्रभावित, निर्देशित या निर्धारित करने वाले जितने ज्ञानानुशासन होंगे, सबकी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भूमिका साहित्य की रचना में रहती ही है, इसलिए उसे पढ़ने-समझने या उसकी समीक्षा करने के क्रम में साहित्येतर संदर्भों से परहेज़ रखना किसी सही परिणाम तक पहुँचाने वाला कैसे हो सकता है? यही हाल शेष सभी विषयों का है। वे भी समग्र संदर्भ में ही पढ़े-पढ़ाये जाने चाहिए।

> जो तर्क नहीं करेगा, वह मतांध है; जो तर्क नहीं कर सकता वह मूर्ख है और जो तर्क करने का साहस नहीं करता, वह दास है।

- यह संभव है कि ज्ञान का जो पाठ लेकर शिक्षक/शिक्षिका कक्षा में जाएँ, वह उपलब्ध ढाँचे वाला ज्ञान न होकर, उनके द्वारा उस पर पर्याप्त अनुसंधान के बाद ही आकार लिया हुआ ज्ञान हो, पर 'कक्षा में जाने के पूर्व शोधित ज्ञान-पाठ' भी कक्षा में जाकर एक नये अनुसंधान की प्रक्रिया से पुन: गुज़रता है— जितनी बार वह प्रस्तुत किया जाता है, उतनी बार नये-नये प्रश्नचिह्नों के बीच से होकर उसे जाना पड़ता है। इनमें से कुछ प्रश्नचिह्न विद्यार्थियों के होते हैं, तो कुछ कक्षा-शिक्षण के दौरान खुद शिक्षक/शिक्षिका के ही भीतर से उभरे होते हैं। उनकी कसौटी पर उपलब्ध ज्ञान के सामाजिक-राजनैतिक संदर्भों की जाँच होती है।
- ज्ञान के मौजूदा ढाँचे को मिली इन चुनौतियों यानी, कक्षायी 'वाद-प्रतिवाद' *(Thesis-Antithesis)* की प्रक्रिया से उसके गुज़रते रहने से हर बार नये रूप में पाठ (संवाद यानी *Synthesis*) उभरकर सामने आता है। यह है— उपलब्ध ज्ञान के ढाँचे का रचनात्मक अतिक्रमण। साहित्य के संदर्भ में यह किसी पाठ के नये अर्थ का निकलकर आना है, जिसे कुछ लोग 'नये पाठ की निर्मिति' भी कहते हैं।

- इस तरह से ज्ञान व विमर्श की दुनिया में विद्यालय हर बार कुछ-न-कुछ नया जोड़ता है, जिसका सबसे बड़ा दारोमदार शिक्षक-शिक्षिका पर होता है। किसी कक्षा के बाद हर बार न केवल विद्यार्थी, बल्कि शिक्षक/शिक्षिका भी पहले से कुछ नये होकर लौटते हैं। कविवर, भवानी प्रसाद मिश्र के शब्दों में कहें, तो जहाँ वे सबेरे जागे होते/होती हैं, हर दिन उससे कुछ आगे बढ़कर सोते/सोती हैं।

8.1.4 पाठ को कक्षा में ले जाने की तैयारी

यह शीर्षक कुछ अजीब-सा लग रहा होगा पर किसी भी उद्देश्यपूरक काम को करने की तैयारी तो ज़रूरी है। हाँ, यह तैयारी सिर्फ़ कक्षा तक पहुँचने में मदद करेगी, इसके बाद तो कक्षा की ज़रूरतों के अनुसार उसे आप खुद बदल देंगे। जहाँ तक पढ़ाई-लिखाई का सवाल है वह तो उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया होने के साथ स्कूलों में औपचारिक प्रक्रिया भी होती है। औपचारिक होने के कारण इसके साथ समय, स्थान, समूह आदि कारकों से संबद्ध मर्यादाएँ और ज़िम्मेदारियाँ जुड़ी हुई होती हैं। पाठ तैयार करते वक्त इसका विचार आवश्यक है कि कक्षाओं में चलने वाली प्रक्रियाएँ तथा गतिविधियाँ किन सिद्धांतों पर टिकी हों। लगभग उसी प्रकार जैसे किसी राष्ट्र की शासन व्यवस्था की प्रक्रियाएँ किन्हीं सिद्धांतों पर टिकी होती हैं। इस बात को समझने के लिए पाठ तैयार करने के व्यापक रूप से प्रचलित तरीकों का विश्लेषण करना सहायक होगा।

प्रचलित तरीकों में किसी पाठ को एक से अधिक टुकड़ों में बाँट दिया जाता है। जिसे आमतौर पर अन्विति करना कहते हैं। प्रचलित तरीकों के आधार पर तैयार किए जाने वाली पाठ-योजनाओं की दूसरी विशेषता यह है कि इनमें पाठ को पढ़ाया जाता है। इनमें पाठ को समझने की क्षमताएँ विकसित करने पर ज़ोर नहीं होता। पाठ को समझने की क्षमताओं का विकास हो जाए तो हो जाए।

पाठ को टुकड़ों में तोड़ने में अंतर्निहित धारणा यह है कि पाठ में दिए गए हर शब्द को शिक्षिका द्वारा पढ़कर सुनाया जाएगा। इसलिए इस प्रकार की पाठ-योजनाएँ अनुकरण पर टिकी होती हैं। इस प्रकार की योजना पर टिकी कक्षाएँ मुख्यत: व्यवहारवादी समझ पर आधारित होती हैं। इस प्रकार की कक्षाओं में ज्ञान को शिक्षक/शिक्षिका से विद्यार्थी की ओर जाने वाली वस्तु माना जाता है और विद्यार्थी को उस वस्तु का ग्रहणकर्ता, इसीलिए इस प्रकार की कक्षाओं में पाठ को टुकड़ों में तोड़कर अन्वितियाँ बनाई जाती हैं।

इस प्रकार की पाठ-योजनाओं में पढ़ाए जाने पर बहुत ज़ोर होता है। ऐसी कक्षाएँ इस समझ पर आधारित होती हैं कि ज्ञान को विद्यार्थी में भरा जाना है। इनमें माना जाता है कि विद्यार्थी के अनुभवों तथा उसकी आंतरिक स्थितियों का सीखने में कोई योगदान नहीं होता। इसीलिए पढ़ाया जाना है पर बल दिया जाता है। ऐसी समझ पर आधारित कक्षाएँ एकतरफ़ा होने के कारण विद्यार्थियों के लिए अकसर नीरस होती हैं।

जहाँ पाठ को पढ़ाया जाता है वहाँ पाठ के बाद विद्यार्थियों की परीक्षा ली जाती है या उसकी याददाश्त का परीक्षण होता है, जिसे बहु-प्रचलित पाठ-योजनाओं के प्रारूप में पुन: स्मरण कहा जाता है। इस तरह व्यवहारवादी समझ पर आधारित पाठ-योजनाएँ जानकारियों के एकतरफ़ प्रवाह से शुरू होकर पुन: स्मरण पर ठहरती हैं।

पाठ-योजनाओं के मूल में भाषा सीखने, मूल्यांकन आदि के बारे में समझ के अलग-अलग रूप रहते हैं। ऊपर जिन पाठ-योजनाओं का ज़िक्र किया गया है उनमें माना जाता है कि भाषा-कक्षा में शिक्षक सिखाते हैं और विद्यार्थी शिक्षकों से सीखते हैं, लेकिन इनके बारे में एक प्रकार की समझ और है जो मानती है कि भाषा तो विद्यार्थी समाज के साथ अंत:क्रिया करते हुए सीखते हैं। इस समझ को सीखने-सिखाने की रचनात्मक दृष्टि कहा जाता है। भाषा कोई ऐसी कुशलता नहीं है जो किसी एक को कोई दूसरा सिखा सकता/सकती है। इस समझ पर आधारित पाठ-योजनाएँ एकतरफ़ा भाषण से मुक्त होंगी। उनमें पाठ समझाया नहीं जाता, बल्कि मिलाकर पाठ के अर्थ खोजे जाते हैं, क्योंकि अर्थ खोजने की प्रक्रिया में सभी शामिल होते हैं इसलिए एक पाठ के एक से अधिक अर्थ खोजे जा सकते हैं। इसलिए ऐसी कक्षाओं में पुन:स्मरण के लिए जगह नहीं होती, क्योंकि विद्यार्थी पाठ के अर्थ खोजने में जिन तरीकों, तर्कों, क्षमताओं का उपयोग कर रहे होते हैं वे कक्षा-प्रक्रिया में रचे-बसे होते हैं। इसलिए हर समय अलग से परीक्षण की ज़रूरत नहीं होती।

> ज्ञान सृजन की प्रक्रियाओं में ... बाँटना शामिल है।
>
> —*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*

जो पाठ योजनाएँ जानकारियों के एकतरफ़ा प्रवाह पर टिककर विद्यार्थी की याद कर लेने की आदत का परीक्षण करती हैं उनमें गलती करके सीखने के विचार को खारिज किया जाता है। उनमें किसी सवाल का पूर्व-निर्धारित उत्तर होता है, जिसे बिना बदले ग्रहण करना विद्यार्थी की ज़िम्मेदारी होती है, जबकि अर्थ ढूँढ़ने की क्षमताओं के विकास पर टिकी रचनात्मक *(Constructive)* पाठ-योजनाओं में विभिन्न अर्थों की खोज को सीखने की क्षमता के विकास का पैमाना माना जाता है। रचनात्मक पाठ-योजनाओं में पाठ के टुकड़े नहीं किए जाते, बल्कि उसमें से निकलने या उभरने वाले सरोकारों को कक्षा-प्रक्रियाओं का आधार बनाया जाता है। उन सरोकारों पर कक्षा में चर्चा की जाती है, पाठ में जहाँ-जहाँ पर उन सरोकारों को बेहतर ढंग से व्यक्त किया गया है, उन्हें पढ़ा जाता है। चर्चा करने और पाठ के महत्वपूर्ण हिस्से को पढ़कर जो समझ बनती है, उसे लिखकर साझा किया जाता है। सरोकारों के आधार पर पूरे पाठ के बारे में समझ बनाई जाती है। उस समझ के आधार पर उन सरोकारों को नए तरीके

से अभिव्यक्त किया जाता है। इस प्रकार जहाँ व्यवहारवादी पाठ-योजनाओं के केंद्र में एक अर्थ होता है और उस अर्थ का रचयिता कक्षा के बाहर कहीं और होता है वहीं रचनात्मक पाठ-योजनाओं में अर्थ के रचयिता बाहर के अलावा कक्षा में भी होते हैं और इसीलिए अर्थ, पूर्व निर्धारित न होकर बनते-बिगड़ते रहते हैं।

अब तक हमने व्यवहारवाद तथा रचनात्मक दृष्टि के आधार पर तैयार की जाने वाली पाठ-योजनाओं की विशेषताओं को समझा। अब हम एक उदाहरण के ज़रिये एक कविता पर दो दृष्टियों से सीखने की तैयारी करेंगे और उनका विश्लेषण करके उनमें निहित अंतरों को पहचानेंगे।

मुक्ति की आकांक्षा

चिड़ियों को लाख समझाओ कि पिंजड़े के बाहर
धरती बहुत बड़ी है, निर्मम है,
वहाँ हवा में उन्हें, अपने जिस्म की गंध तक नहीं मिलेगी।
यूँ तो बाहर समुद्र है, नदी है, झरना है,
पर पानी के लिए भटकना है, यहाँ कटोरी में भरा जल गटकना है।
बाहर दाने का टोटा है, यहाँ चुग्गा मोटा है।
बाहर बहेलिये का डर है, यहाँ निर्द्वंद कंठ-स्वर है।
फिर भी चिड़िया मुक्ति का गाना गाएगी,
मारे जाने की आशंका से भरे होने पर भी,
पिंजड़े से जितना अंग निकल सकेगा, निकालेगी, हरसूँ ज़ोर लगाएगी
और पिंजड़ा टूट जाने या खुल जाने पर उड़ जाएगी।

—सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सीखने की तैयारी—1

विशिष्ट उद्देश्य

इस कविता को पढ़कर छात्र निम्नांकित बातें जान सकेंगे —

1. सुख-सुविधाओं से भरपूर गुलामी के जीवन की अपेक्षा अभावों एवं कष्टों से परिपूर्ण स्वतंत्रता का जीवन श्रेयस्कर है।
2. पराधीन होकर जीवन में मिलने वाली सुख-सुविधाओं के आकर्षण में नहीं पड़ना चाहिए
3. इसे पढ़कर स्वाधीन जीवन जीने की प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे

प्रस्तावना

इस कविता की प्रस्तावना के रूप में निम्नलिखित बोधकथा का प्रयोग किया जा सकता है। 'एक आदमी को पक्षी पालने का बहुत शौक था। इसके लिए उसने एक सुंदर पिंजड़ा बनवाया, जिसमें वह कभी तोता, कभी मैना तो कभी गौरैया पालता था, किंतु पक्षियों को बंदी बनाकर रखना उस पिंजड़े को अच्छा नहीं लगता था। इसलिए उसे जैसे ही अवसर मिलता वह अपना दरवाज़ा खोलकर पक्षी को उड़ा देता था। एक दिन उसके मालिक ने एक तोता लाकर पिंजड़े में बंद कर दिया। तोता पिंजड़े में बढ़िया दाना-पानी पाकर बहुत खुश हुआ। मौका मिलने पर पिंजड़े ने अपना दरवाज़ा खोला और तोते को उड़ जाने के लिए कहा, किंतु तोता तो खा-पीकर मस्त होकर सो रहा था। पिंजड़े के बार-बार जगाने पर भी वह उड़ जाने के लिए तैयार न हुआ और पिंजड़े से बोला कि मैं इतना आराम, इतना बढ़िया दाना-पानी छोड़कर बाहर भटकने के लिए क्यों जाऊँ? कुछ दिन बाद तोते के मालिक ने उसे अपने एक मित्र को भेंट कर दिया और उसकी जगह एक गौरैया पाल ली। एक दिन पिंजड़े ने अपनी आदत के अनुसार अपना दरवाज़ा खोलकर गौरैया को भी उड़ जाने की सलाह दी और गौरैया बढ़िया भोजन की परवाह किए बिना वहाँ से फ़ौरन उड़ गई।' उपर्युक्त बोधकथा सुनाने के बाद छात्रों से पूछिए तुम्हें तोता और गौरैया में से किसका व्यवहार अच्छा लगा और क्यों?

शिक्षक — आज हम सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की इसी भाव की कविता 'मुक्ति की आकांक्षा' पढ़ेंगे।

पठन — शिक्षक द्वारा

इस कविता में संकलन की अन्य कविताओं जैसी लयबद्धता नहीं है, फिर भी इसमें एक विशिष्ट लय और तु-तान है। अपने पठन में कविता की लय, यति या विराम और गति आदि का उचित ध्यान रखें।

भावबोध

- इस कविता में किन दो प्रकार की स्थितियों का वर्णन किया गया है?
- इन दो प्रकार की स्थितियों के माध्यम से कवि क्या बताना चाह रहा है?

पुनः मुखर पठन— शिक्षक द्वारा

भाव और शिल्प सौंदर्य-विश्लेषण

- चिड़िया के संदर्भ में धरती को बहुत बड़ी और निर्मम क्यों बताया गया है? चिड़िया एक छोटा-सा पक्षी है। धरती के विशाल वायुमंडल में चिड़िया की अपनी निजी पहचान खो जाएगी। धरती पर सब कुछ रहने पर भी चिड़िया को अपने चुग्गा-पानी पाने के लिए दूर-दूर भटकना पड़ेगा। बाहर उसे कोई मार भी सकता है।

- पिंजड़े के भीतर चिड़िया को क्या-क्या सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं? (उसकी अपनी पहचान है। पीने के लिए जल है, खाने के लिए दाना है और प्राणों को भी कोई खतरा नहीं। बेखटक गा सकती है)
- पिंजड़े के बाहर क्या-क्या असुविधाएँ हैं? (पहचान खोना, चुग्गा-पानी के लिए भटकना, बहेलिये का डर)
- पिंजड़े के बाहर असुविधा और जान तक का खतरा होने के बावज़ूद चिड़िया मौका पाकर क्यों उड़ जाना चाहेगी? (आज़ादी का जीवन पसंद होने के कारण) 'हरसूँ ज़ोर लगाएगी' का क्या अर्थ है? (यथासंभव प्रयत्न करेगी।)

मुखर पठन— विद्यार्थियों द्वारा

मूल्यांकन

1. निम्नलिखित काव्य पंक्तियों का आशय स्पष्ट करो—
   (क) अपने जिस्म की गंध तक नहीं मिलेगी
   (ख) यहाँ निर्द्वंद कंठ-स्वर है
2. कविता की उन पंक्तियों को छाँटो जो तुम्हें तुक की दृष्टि से अच्छी लगीं।
3. किन खतरों के बावज़ूद चिड़िया पिंजड़े में रहना पसंद नहीं करती?
4. प्रस्तुत कविता के केंद्रीय भाव की तुलना निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों से करो—

हम बहता जल पीने वाले
मर जाएँगें भूखे-प्यासे।
कहीं भली है कटुक निबोरी
कनक-कटोरी की मैदा से।

—शिवमंगल सिंह सुमन

5. चिड़िया और पिंजड़े के स्वामी के निम्नांकित संवादों को पूरा कराएँ—
   स्वामी — चिड़िया! पिंजड़े में तुम्हारे भोजन-पानी का सब प्रबंध है, तब तुम क्यों बार-बार बाहर जाने की हठ करती हो?
   चिड़िया — स्वामी, जीवन में ------- तो सब कुछ नहीं है। ---------- का अपना आनंद है।
   स्वामी — इस आनंद के चक्कर में तुझे अपने --------- भी गँवाने पड़ सकते हैं। क्रूर बहेलिये ताक में बैठे हैं।
   चिड़िया — कोई परवाह नहीं। सभी को एक दिन --------- है। कुछ क्षण --------- से जी लें।

सीखने की तैयारी—2

विशिष्ट उद्देश्य

इस पाठ को एक इकाई माना जाए। विचार किया जाए कि इस इकाई के लिए कितनी पाठ-योजनाओं की आवश्यकता होगी। भाषा-शिक्षण की दृष्टि से उपर्युक्त कविता के बहाने निम्नलिखित सरोकारों (उद्देश्यों) के बारे में समझ बनाई जा सकती है—

1. कविता का उपयुक्त तरीके से वाचन कर सकने की कुशलता का विकास
2. कविता को पढ़ने की क्षमता का विकास
3. कविता में आए बिंबों के लक्षणार्थ तथा व्यंजनार्थ की समझ का विकास
4. कविता में आए बिंबों के लक्षणार्थ तथा व्यंजनार्थ को व्यक्त करने वाले वास्तविक प्रसंगों को कविता से जोड़ पाने की समझ का विकास
5. चिड़िया की जगह बच्चा, बच्ची, स्त्री, आदि को रखकर कविताओं की रचना करना
6. चिड़िया, पिंजड़ा, बहेलिया, आदि शब्दों के संदर्भों की समझ का विकास

उपर्युक्त सरोकारों के लिए एक से अधिक योजनाएँ बनाई जा सकती हैं। हर योजना के अनुसार कक्षा की प्रक्रियाएँ तथा सहायक सामग्रियों का चुनाव किया जाएगा। उदाहरण के लिए, सरोकार—1 तथा सरोकार—4 के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रियाएँ भिन्न होंगी। सरोकार—2 में आवाज़ तथा मुद्राएँ मुख्य सहायक सामग्रियाँ होंगी, लेकिन सरोकार—4 में आवाज़ तथा मुद्राओं के साथ-साथ विभिन्न चित्रों, वीडियो फ़िल्म का उपयोग किया जा सकता है।

चित्र–1

चित्र–2

चित्र–3

चित्र–4

चित्र–5

चित्र–6

चित्र–7

चित्र–8

सरोकार—4 के लिए सहायक सामग्री

अगर हम चाहते हैं कि कविता में आए बिंब जैसे चिड़िया और पिजड़े का बिंब कविता की सीमा तोड़कर उनके जीवनानुभवों में प्रवेश कर जाए तो ऊपर दिए गए चित्रों पर विद्यार्थियों के साथ चर्चा की जाए, तभी कविता के बिंब सरल होकर उनके भीतर प्रवाहित हो सकेंगे।

विद्यार्थियों से चित्रों में दिख रहे जीवों, बच्चों आदि को हो रही अनुभूतियों पर चर्चा के द्वारा चिड़िया और पिजड़े के बिंबों को खुलने में मदद की जाएगी। विद्यार्थी द्वारा की जा रही अभिव्यक्तियों पर ध्यान दिया जाएगा तथा उपयुक्त हस्तक्षेप करके उनको अपनी बात को बेहतर ढंग से कहने या लिखने के अवसर उपलब्ध करवाए जाएँगे।

आइए सीखने की तैयारी—1 तथा सीखने की तैयारी—2 में नीचे दिए गए सवालों के संदर्भ में अंतर को पहचानने की कोशिश करें—

1. दोनों पाठ योजनाओं में शिक्षक/शिक्षिका की भूमिकाओं की क्या-क्या विशेषताएँ हैं।
2. दोनों पाठ योजनाओं के उद्देश्य के प्रसार में क्या अंतर है?
3. दोनों पाठ योजनाओं में शिक्षक/शिक्षिका और विद्यार्थियों के बीच संबंधों में क्या फ़र्क है?
4. दोनों पाठ योजनाओं में सीखना तथा सिखाने वाले के अनुभवों में सहज संवाद के मौके कितने तथा किन रूपों में हैं?

5. दोनों पाठ योजनाओं में से कविता की बेहतर समझ की संभावनाएँ किस पाठ योजना में हैं और क्यों?
6. दोनों पाठ योजनाओं में से किसके द्वारा पूर्व-निर्धारित ज्ञान को संप्रेषित किया जा रहा है? ऐसा करने के शैक्षणिक निहितार्थों पर चर्चा कीजिए।
7. दोनों पाठ योजनाओं में सीखने की समझ के बारे में क्या अंतर दिखते हैं?
8. दोनों पाठ योजनाओं में मूल्यांकन के तरीकों में क्या अंतर हैं?

दोनों पाठ योजनाओं के संदर्भ में ऊपर दिए गए सवालों के उत्तर तलाशने की प्रक्रिया में विभिन्न विधाओं के लिए बेहतर पाठ योजनाओं के निर्माण हेतु अंतर्दृष्टि तथा प्रारूप के बिंदुओं को पहचानिए तथा अपने शिक्षक/शिक्षिका की मदद से पाठ योजनाएँ तैयार कीजिए।

भाषा से संवाद

प्रशिक्षण के दौरान

1. नवीन पाठ्यचर्या की समीक्षा और प्रस्तुतीकरण (समूह कार्य)।
   (क) नवीन पाठ्यचर्या में भाषा शिक्षण से संबंधित अध्याय पर चर्चा।
   (ख) नवीन पाठ्यचर्या में भाषा शिक्षण से संबंधित अध्याय का विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण (समूह)।
2. 'बच्चे की भाषा' या ऐसे अन्य किसी विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित करें।

परियोजना कार्य

समूह कार्य

1. विभिन्न राज्यों के हिंदी के पाठ्यक्रम का विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण करें (समूह कार्य)।
2. अपनी मनपसंद कहानियों का संकलन करें तथा उनसे संबंधित लेख पढ़ें।
3. किन्हीं दो राज्यों द्वारा विकसित किसी भी एक (6–12) कक्षा की हिंदी की पाठ्यपुस्तक का तुलनात्मक अध्ययन करें।

इकाई

9

पढ़ने-पढ़ाने की सामग्री

9.1 शिक्षण सामग्री 310

9.1.1 शिक्षण सामग्री की भूमिका 310

9.1.2 शिक्षण सामग्री के विविध रूप 312

9.1.3 शिक्षकों से अपेक्षा क्यों? 313

9.1.4 शिक्षकों की भूमिका 316

9.1 शिक्षण सामग्री

9.1.1 शिक्षण सामग्री की भूमिका

हम जानते हैं कि स्कूली शिक्षा एक पाठ्यक्रम पर आधारित होती है। पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम उन दिशा-निर्देशों का समुच्चय होता है, जिससे विभिन्न विषय दिशा पाते हैं। पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम की बातों को मूर्त रूप देने का महत्वपूर्ण ज़रिया पाठ्यपुस्तकें होती हैं। जिनमें उम्र विशेष के अनुरूप सामग्री को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ऐसा पाया जाता है कि पाठ्यपुस्तकों में शामिल सामग्री को सीधे-सीधे समझने में विद्यार्थियों को मुश्किल होती है। इसलिए पाठ्यपुस्तकों तथा विद्यार्थियों के बीच किसी-न-किसी प्रकार की मध्यस्थता की आवश्यकता महसूस की जाती रही है। यह मध्यस्थता सबसे अधिक अध्यापक के रूप में ज़रूरी है। अध्यापक पाठ को समझने में मदद करने की पूरी तरह से कोशिश करते हैं पर कक्षा विद्यार्थी, समय, स्थान आदि की सीमाओं में बंधे हम, कई बार सब कुछ समझा पाने में अपने को असमर्थ पाते हैं, तब जो कुछ भी अध्यापक की सहायता करते हैं, वे सब सहायक सामग्री हो सकते हैं— कक्षा में उपस्थित भौतिक सामान या फिर कक्षा की खिड़की से दिखता बाहर की दुनिया सब कुछ। शिक्षा के क्षेत्र में मध्यस्थता के साधनों को सहायक सामग्री के नाम से जाना जाता है। सहायक सामग्री भौतिक तथा अभौतिक या मनोवैज्ञानिक हो सकती है। भाषा, सहायक सामग्री का अभौतिक रूप है।

दृश्य, दृश्य-श्रव्य सामग्री सहायक सामग्री के भौतिक रूप हैं। चॉक, बोर्ड, कंप्यूटर, रेडियो, सी.डी., पॉवर प्वाइंट, प्रोजेक्टर, पोस्टर, चार्ट, चित्र, मॉडल, नक्शा आदि सहायक सामग्री के भौतिक रूप हैं।

भाषा सहायक सामग्री का मनोवैज्ञानिक रूप है, जिसका उपयोग बहुआयामी है। उदाहरण, विस्तार, व्याख्या, संदर्भ से जोड़ना, प्रश्न पूछना आदि सहायक सामग्री के रूप में भाषा के विविध उपयोग हैं।

सहायक सामग्री के भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप का सांगठनिक उपयोग, सामग्री के प्रभावशाली उपयोग के लिए आवश्यक होता है।

उदाहरण के लिए, चार्ट पर विचार करें। चार्ट एक भौतिक साधन है। कक्षा में इसे प्रदर्शित किया जा सकता है। विद्यार्थी इसका उपयोग किसी बात को समझने के लिए कर सकते हैं। यदि इसके साथ-साथ शिक्षिका चार्ट में दर्शायी गई बातों को विस्तार देती हैं, चार्ट के अलग-अलग चित्रों के बीच रिश्तों को तलाशने हेतु प्रेरित करने के लिए प्रश्न पूछती हैं तो चार्ट का उपयोग अधिक प्रभावी हो सकता है। यह एक उदाहरण था, जिसमें भौतिक

उपकरण को मनोवैज्ञानिक उपकरण की मदद से अधिक प्रभावी बनाया गया। आइए, एक अन्य उदाहरण पर विचार करते हैं। किसी कक्षा में शिक्षक कविता की गीतात्मकता पर चर्चा कर रहे हैं। वे कविता को लयात्मक तरीके से सुनाते हैं। सुनाते समय लय उत्पन्न करने वाले शब्दों पर विशेष ज़ोर देते हैं, लेकिन किसी प्रकार की भौतिक सामग्री का उपयोग नहीं करते। कुछ समय बाद वे विद्यार्थियों से प्रश्न पूछते हैं। प्रश्नों के उत्तर में उन्हें जो पृष्ठ-पोषण मिलता है, उससे उन्हें पता चलता है कि पढ़ाई जा रही कविता की गीतात्मकता के बारे में विद्यार्थी ठीक से नहीं समझ पाए हैं। वे अपनी कक्षा को याद करते हैं। भाव के आधार पर अपनी कक्षा का विश्लेषण करने पर वे पाते हैं कि कविता के वाचन भाव से उसकी लयात्मकता की समझ विकसित करना कठिन है। वे तय करते हैं कि इसी उद्देश्य पर अगली कक्षा में उन्हें किन सहायक सामग्रियों का किस प्रकार उपयोग करना है।

अगले दिन वे उस कविता को चार्ट पर लिखकर लाते हैं, लेकिन इस चार्ट में वे उन शब्दों को कागज़ के टुकड़ों से छुपा देते हैं, जिनसे कविता में लयात्मकता पैदा होती है। शिक्षक यह समझाना चाहते हैं कि विद्यार्थी कविता के संदर्भ में अर्थ तथा लय के बीच रिश्तों को समझ सकें। शिक्षक विद्यार्थियों से कविता में आए लयात्मक शब्दों के पर्याय पूछते हैं। उन पर्यायों को शब्द के सामने श्यामपट्ट पर लिख दिया जाता है। फिर चार्ट में लयात्मक शब्दों के ऊपर अलग से कागज़ चिपकाकर उन पर उनके संगत पर्यायवाची शब्द लिख देते हैं। इसके बाद वे विद्यार्थियों से इस कविता को पढ़ने के लिए कहते हैं। उसके बाद उसके अर्थ पर चर्चा होती है। वे पाते हैं कि यह कविता लगभग वही अर्थ नहीं दे रही है जो कि मूल कविता का है। यह प्रक्रिया लयात्मक शब्दों के विभिन्न पर्यायों के साथ दोहराई जा सकती है।

हमने समझा कि शिक्षक ने अपनी कक्षा का विश्लेषण करके उसे सुधारने के तरीके खोजे। पहले दिन उन्होंने कविता-शिक्षण के लिए भाषा यानी मनोवैज्ञानिक उपकरण का ही उपयोग किया। कक्षा के दौरान और उसके बाद विश्लेषण करने पर उन्हें किन्हीं अन्य साधनों के उपयोग की ज़रूरत महसूस हुई। यह ज़रूरत शिक्षण के उद्देश्यों के संदर्भ में पैदा हुई।

सहायक सामग्री की आवश्यकता नीचे दी गई वजहों से भी होती है—

संप्रेषण

कविता, कहानी आदि विभिन्न विधाओं की रचनाओं को अधिक प्रभावी ढंग से संप्रेषित करने के लिए सहायक सामग्री की सहायता ली जा सकती है। सहायक सामग्री इस रूप में भी मददगार होती है कि उसका उसी रूप में बार-बार उपयोग किया जा सकता है।

समय की बचत

कक्षा में कई बातें होती हैं, जिन्हें बार-बार दोहराना पड़ता है। यदि इन बातों को दर्ज कर लिया जाए, जिनका सहजता पूर्वक उपयोग किया जा सके तो शिक्षक/शिक्षिका के समय की बचत हो सकती है। उदाहरण के लिए कविता को यदि चार्ट पर लिख लिया जाए या टाइप करवा लिया जाए या छपी कविता की फ़ोटोकॉपी बड़े कागज़ पर करवा ली जाए तो उसे दोहराना, उसकी ओर ध्यान दिलाना तथा उसका बार-बार उपयोग करने में अपेक्षाकृत कम समय लगता है।

स्वमूल्यांकन के अवसर

सहायक सामग्री का उपयोग विद्यार्थियों को स्वमूल्यांकन के अवसर उपलब्ध करवाने के लिए किया जा सकता है। विशेषकर उच्चारण, वाचन के तरीकों का स्वमूल्यांकन करने के अवसर। इस काम को मोबाइल का उपयोग करके आसानी से किया जा सकता है। किन्हीं विद्यार्थियों से किसी पद्य या गद्य का अंश पढ़वाकर उसे मोबाइल या अन्य साधनों के ज़रिये रिकॉर्ड करके बाद में उन्हें उन्हीं का पढ़ा हुआ सुनाया जाए। इस तरीके से उन्हें अपनी गलतियों पर विचार करने का मौका मिलेगा और साथ ही उनके सामने उनकी गलतियों को वस्तुनिष्ठ रूप में रखा जा सकता है।

समझ के विस्तार में सहयोगी

क्षितिज भाग–1 में राजेश जोशी की कविता 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' दी गई है। अनेक बार यह पाया गया है कि कविता में आए बिंबों को फैलाने तथा उसके विविध रूपों को दृश्यमान करना विद्यार्थियों के लिए एक चुनौती है। इस चुनौती का सामना करने में सहायक सामग्री की मदद ली जा सकती है।

छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों पर बाल मज़दूरी की भीषणता को दृश्यमान करने तथा उनके प्रति की जा रही असमानताओं के प्रति संवेदनशीलता का विकास होने के लिए बाल-मज़दूरी के विभिन्न रूपों से संबद्ध क्लिपिंग्स, पोस्टर, चित्रों आदि को दिखाया जा सकता है। खेतों, ईंट के भट्ठों, घरों, ढाबों, स्टेशनों, होटलों, बंदरगाहों आदि पर काम करते बच्चों के चित्र और वीडियो इंटरनेट से लिए जा सकते हैं। इस उदाहरण से यह समझना ज़रूरी है कि सहायक सामग्री का उपयोग चित्रों की प्रदर्शनी लगाने के लिए नहीं किया जा रहा, बल्कि बिंब के विस्तार और इसके साथ-साथ संवेदना के लिए किया जा रहा है।

9.1.2 शिक्षण सामग्री के विविध रूप

इस बात को पहले ही कहा जा चुका है कि सहायक सामग्री भौतिक तथा अभौतिक हो सकती हैं। भौतिक सामग्री के अंतर्गत चार्ट, मॉडल, चित्र, ग्राफ़, श्यामपट्ट, मानचित्र, रेडियो, दूरदर्शन, रिकॉर्ड प्लेयर, वीडियो आदि आते हैं। इन सामग्रियों को वर्गीकृत किया

जा सकता है। वर्गीकरण इस बात पर निर्भर करेगा कि उनको सीखने का ज़रिया बनाने के लिए हमारी कौन-सी इंद्रियाँ सक्रिय रहती हैं।

उदाहरण के लिए, श्यामपट्ट पर विचार करें। श्यामपट्ट का सहायक सामग्री के रूप में उपयोग करते हुए शिक्षिका प्रकटत: आँखों तथा हाथों का इस्तेमाल करती हैं। सीखने में सहायता लेने के लिए विद्यार्थी भी श्यामपट्ट का उपयोग करते हुए आँखों तथा हाथों से काम लेते हैं। श्यामपट्ट को दृश्य, श्रव्य, दृश्य-श्रव्य में से किस कोटि में वर्गीकृत किया जाए? यह सही है कि श्यामपट्ट पर लिखी बातों को देखकर पढ़ा जाता है। इस तर्क के आधार पर उसे दृश्य सामग्री की कोटि में रखा जा सकता है, लेकिन शिक्षिका और विद्यार्थी द्वारा उपयोग में लाने के क्रम में उनके हाथ भी सक्रिय रहते हैं। यदि हम हाथों के सक्रिय होने के तर्क को भी शामिल करना चाहें तो श्यामपट्ट को किस कोटि में रखेंगे? हमारे सामने चुनौती है कि विभिन्न सहायक सामग्रियों को किन कोटियों में रखा जाए? क्योंकि सहायक सामग्रियों की पारंपरिक कोटियाँ नाकाफ़ी साबित हो रही हैं। आँख पर ध्यान दें तो श्यामपट्ट दृश्य-सामग्री है। शैक्षिक जगत में ऐसी कोटि बनाई ही नहीं गई है जो हाथ पर ध्यान देती हो। इसलिए पारंपरिक कोटियों से पूरी तरह से काम चलने का नहीं। हम नयी कोटियों के निर्माण पर विचार कर सकते हैं।

9.1.3 शिक्षकों से अपेक्षा

अनेक बार ऐसा पाया गया है कि कक्षा में जिन शिक्षण सामग्रियों का उपयोग किया जाता है उनका उद्देश्यों के साथ समन्वय नहीं होता। अनेक बार ऐसा भी होता है कि सहायक सामग्री के उपयोग के दबाव में शिक्षक/शिक्षिका कक्षा में अनावश्यक सामग्री ले आते हैं। सहायक सामग्री के उपयोग का तर्क तकनीकी न होकर शिक्षणशास्त्रीय होना चाहिए। आकर्षण सामग्री की ओर न होकर शिक्षा की ओर होना चाहिए। सामग्री का चुनाव करते समय उद्देश्य तथा कक्षा-प्रक्रिया के साथ उसके तादात्म्य का खयाल रखा जाना अपेक्षित है। चुनौती यह है कि किसी शिक्षण-उद्देश्य के अनुकूल कक्षा की प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाने में किस-किस सहायक सामग्री का किस सीमा तक उपयोग किया जाना चाहिए।

सहायक सामग्री का निर्माण तथा चुनाव करते समय इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि उसमें विद्यार्थियों के अनुभवों को शामिल करने तथा उन्हें विस्तार देने की क्षमता होनी चाहिए। इस आशय का एक उदाहरण राजेश जोशी की कविता के संदर्भ में पहले दिया जा चुका है।

सामग्री का उपयोग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि सामग्री माध्यम होती है, लक्ष्य नहीं। सामग्री सुंदर और आकर्षक होने की बजाय पाठ या संकल्पना को समझाने में उसकी उपयोगिता प्रमुख होनी चाहिए। यानी सामग्री पर ध्यान न होकर, सामग्री के उपयोग पर होना चाहिए।

यदि सामग्री ऐसी बनाई जाए जिसका उपयोग एक से अधिक प्रयोजनों के लिए किया जा सके तो अधिक लाभकारी होती है। इसमें कम साधन, समय तथा पैसे की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए किसी चित्र का चुनाव कीजिए। इसे सहायक सामग्री के रूप में कई उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। इस चित्र के कुछ निम्नलिखित प्रयोग हो सकते हैं—

(क) चित्र-आधारित विवरण तैयार करने के अवसर देना

(ख) कहानी तैयार करने के अवसर देना

(ग) कविता तैयार करने के अवसर देना

(घ) चित्र के अर्थ पर चर्चा करवाना आदि

कुछ आवश्यक बिंदु...

जब हम शैक्षिक तकनीकी की भूमिका के बारे में बात करते हैं तो हमें अपने चिंतन की दिशा 'शिक्षा' की ओर करनी चाहिए न कि किसी तकनीक और संभार-तंत्र (लॉजिस्टिक) प्राप्ति की ओर। हमारा ज़ोर सीखने की संस्कृति की ओर होना चाहिए बनिस्बत इसकी तकनीकी के। हमारा लक्ष्य, सिर्फ़ शिक्षक-प्रशिक्षण को छोड़कर जहाँ शैक्षिक तकनीकी एक विषय के ही रूप में पढ़ाया जाता है, गुणवत्ता, प्रासंगिकता, उपयुक्तता तथा इसी तरह की अन्य विशेषताओं के साथ एक मूल्य के ही रूप में जोड़ना है जो कि शिक्षा का ऐसा रूपांतरण कर सके कि वह सीखने वाले के उस मनोभाव के प्रति संवेदनशील तथा उत्तरदायी बन सके जो सीखने वाले की सीखने के प्रति उत्सुकता और इच्छा को बढ़ाता हो।

स्थान — हिंदी की कक्षा

पर्यवेक्षक कक्षा में सबसे पीछे एक डेस्क पर बैठे हैं। शिक्षिका ने कक्षा में प्रवेश किया है। उन्होंने बैग टेबल पर रखा। बैग खोलकर उन्होंने उसमें से एक कटोरी निकाली और एक टेबल पर कोने में रख दी। अब वह बैग में से एक पोलीथीन निकाल रही हैं। उसे निकालकर उन्होंने कटोरी की बगल में रख दिया। अब वह चॉक उठाकर श्यामपट्ट की तरफ़ बढ़ रही हैं। उन्होंने श्यामपट्ट पर लिखा 'कबीर के दोहे' अब वह किताब खोल रही हैं। अपेक्षित पृष्ठ सामने आ जाने पर वे विद्यार्थियों को बता रही हैं कि 'आज मैं आपको कबीर के दोहे पढ़ाऊँगी।' उन्होंने पढ़ना शुरू किया—

तिनका कबहुँ ना निंदिए, जो पाँवन तर होय,
कबहुँ उड़ै आँखिन परै, तो पीर घनेरी होय।

उपर्युक्त दोहा पढ़ने के बाद वे टेबल पर रखी पोलीथीन को खोलकर उसमें रखे भूसे में से थोड़ा सा भूसा निकालकर कटोरी में रख रही हैं। अब उन्होंने कटोरी को हाथ में उठा लिया है। वे उसमें से भूसे का एक तिनका दो उँगलियों के बीच पकड़कर बच्चे-बच्चियों को दिखाकर पूछ रही हैं, "ये क्या है?"

बच्चे-बच्चियाँ — "तिनका"

शिक्षिका (तिनके पर फूँक मारकर दिखाते हुए) — "अगर ये आँख में पड़ जाए तो?"

बच्चे-बच्चियाँ — "चुभेगा, दर्द होगा।"

शिक्षिका — 'शाबाश! तो आपको दोहे का मतलब समझ में आ गया।"

बच्चे-बच्चियाँ — "हाँ ...।"

शिक्षिका — "बहुत अच्छा।"

यह एक दृश्य है जो सहायक सामग्री को उपयोग करने के एक विकल्प को दर्शाता है। इसमें तिनके को अभिधा के स्तर पर रखकर ही विचार किया जा रहा है। जबकि दोहे (कविता) की खूबसूरती तिनके के लक्षणा और व्यंजना के अर्थ में निहित है। इस संदर्भ में उपयोग की गई सहायक सामग्री तर्कसंगत नहीं है।

प्रश्न – विचार कीजिए कि उपर्युक्त दोहे के अर्थ को समझने में मदद करने के लिए तर्कसंगत सहायक सामग्री का स्वरूप क्या हो सकता है?

9.1.4 शिक्षकों की भूमिका

सीखना बालकेंद्रित होना चाहिए। सृजनात्मक शिक्षा दृष्टि सभी गतिविधियों को बच्चों के इर्द-गिर्द निर्मित करने की पैरोकार है। इस दृष्टि से शिक्षकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। पाठ्यसामग्री के अनेक रूपों में बच्चों द्वारा चुनी गई सामग्री का बहुत महत्व है। वे जब सामग्री चुनते हैं तो भाषा को समझने का नज़रिया भी सीख रहे होते हैं। इस संबंध में शिक्षकों की भूमिका क्या है। इस पर गंभीरता से सोचना होगा। इतिहास की कक्षा। कक्षा में लगभग 38 विद्यार्थी हैं। शिक्षक नौजवान हैं। चाल से चुस्त और ऊर्जावान दिख रहे हैं। सामने खड़े होकर उन्होंने विद्यार्थियों पर विहंगम दृष्टि डाली। उन्हें शांत होने को कहा। जब कक्षा में शोर का स्तर काफ़ी कम हो गया तब उन्होंने विद्यार्थियों से पूछा– "बच्चो आपके आस-पास कौन-कौन से जानवर मिलते हैं?" यह सवाल विद्यार्थियों के जीवन से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार यह सवाल सीखने के संदर्भ में स्कूल और घर को जोड़ता है। यह सवाल विद्यार्थियों के अनुभवों को कक्षा में प्रवेश करने का रास्ता बनाता है। सवाल सुनते ही विद्यार्थियों ने जानवरों के नाम बताने शुरू किए। "गाय, भैंस, कुत्ता, मुर्गा, ...।" शिक्षक उन्हें शाबाशी दे रहे हैं। उनका उत्साह बढ़ा रहे हैं। जब उन्होंने बहुत सारे जानवरों के नाम बता दिए तो शिक्षक ने उनके कुछ और अनुभवों को कक्षा में लाने के मकसद से पूछा– "बच्चों, एक और जानवर होता है। जिसे हम सब ने देखा है। जो गंदी जगहों पर रहता है और गंदी चीज़ें खाता है। क्या तुम उसका नाम बता सकते हो?"

बच्चों को सवाल से पहले संकेत मिल चुके थे, इसलिए उन्होंने तुरंत और एक साथ उत्तर दिया सूअर। शिक्षक का चेहरा प्रसन्नता से खिल गया। ऐसे में शाबाशी देना अच्छे शिक्षक का कर्त्तव्य है। इसलिए उन्होंने कहा–"शाबाश बच्चों।" उन्होंने अगला सवाल पूछा–"अच्छा ये बताओ कि सूअर की बीवी का क्या नाम होता है" ऐसा करते हुए उन्होंने घूँघट निकालने का अभिनय भी किया, जिससे बच्चों को आंनद की प्राप्ति हुई। शिक्षक का सवाल सुनकर बच्चे बोले– "जी, सूरी।" शिक्षक ने एक बार फिर से शाबाशी दी। सहभागितापूर्ण कक्षा का उदाहरण। शिक्षक ने श्यामपट्ट पर लिखा– 'सूरी'। शिक्षक ने एक और सवाल पूछा– "अच्छा बच्चों, अब ये बताओ कि जंगल में कौन-कौन से जानवर

मिलते हैं” बच्चों के अनुभवों के लिए जगह बनाने का एक और प्रयास। सवाल सुनकर विद्यार्थियों ने बताना शुरू किया— “हाथी, गैंडा, हिरन, बंदर,... ।” अब शिक्षक की समझदारी की परीक्षा थी। उन्हें ऐसे संकेत देने थे, ताकि विद्यार्थी अपने अनुभवों में से अपेक्षित बात कह दें। इस मकसद से शिक्षक ने कहा— “देखिए, एक जानवर और होता है जो बड़ा भयानक होता है और आदमी को मारकर खा जाता है। वो कौन सा जानवर है?” बच्चों ने बताया— “जी, भेड़िया।” शिक्षक को लगा कुछ और संकेत देने की ज़रूरत है। यह सोचकर उन्होंने कहा—“वो जानवर भयानक है और उसे जंगल का राजा भी कहते हैं।” संकेत सुनते ही बच्चे बोले— “जी, शेर।” शिक्षक ने एक बार फिर शाबाशी दी और श्यामपट्ट पर ‘सूरी’ के बाईं ओर कुछ जगह छोड़कर लिखा ‘शेर’। इस प्रकार श्यामपट्ट पर लिखा हुआ था, “शेर, सूरी”। ‘शेर’ लिखते ही उन्होंने घोषणा की— “तो बच्चो, आज हम शेर शाह सूरी के बारे में पढ़ेंगे।” इनमें से शाह शिक्षक का अपना योगदान था जबकि शेर और सूरी विद्यार्थियों के अनुभवों की मदद से जुटाए गए थे।

भाषा से संवाद

प्रशिक्षण के दौरान

1. अपनी मनपसंद कविताओं का संकलन तथा उन पर एक लेख लिखें।
2. हिंदी की किन्हीं दो महिला/बाल-पत्रिकाओं की समीक्षा करें।
3. सीमित संसाधनों में ऑडियो/वीडियो कार्यक्रम के कक्षा में इस्तेमाल की योजना बनाएँ।
4. अपने क्षेत्र में प्रचलित लोककथा, लोकगीतों का समूह में बाँटकर संकलन तैयार करें।
5. श्यामपट्ट सहायक सामग्री का कौन सा प्रकार है? तर्क सहित समझाइए।

कक्षा शिक्षण के दौरान

1. चुनौतीपूर्ण बच्चों को ध्यान में रखते हुए हिंदी शिक्षण के लिए दो सहायक शिक्षण सामग्री तैयार करें।
2. विद्यालयी अनुभव कार्यक्रम के दौरान विद्यार्थियों से हस्तलिखित पत्रिका का विकास या हस्तलिखित पत्रिका की रूपरेखा तैयार करवाएँ।
3. विद्यालयी अनुभव कार्यक्रम के दौरान विद्यार्थियों द्वारा हस्तलिखित समाचार पत्र का विकास करवाएँ।

टिप्पणी

इकाई

10

भाषा शिक्षण और आकलन

10.1	**भाषा सीखने की प्रगति का आकलन**	**320**
	10.1.1 आकलन का अर्थ एवं उद्देश्य	320
	10.1.2 सतत और समग्र आकलन	321
	10.1.3 निर्माणात्मक और योगात्मक आकलन	323
	10.1.4 आकलन संबंधी दृष्टि	324
	10.1.5 शिक्षक/शिक्षिका की भूमिका	328
	10.1.6 चुनौतियाँ	328
	10.1.7 पोर्टफ़ोलियो	331
	10.1.8 प्रश्नों का स्वरूप और भूमिका	332

10.1 भाषा सीखने की प्रगति का आकलन

10.1.1 आकलन का अर्थ एवं उद्देश्य

शिक्षा का संबंध वर्तमान के साथ-साथ उस भविष्य से भी होता है, जिसको गढ़ने के प्रयास में शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। यदि हम विद्यार्थियों को ऐसे व्यक्तियों के रूप में ढालना चाहते हैं, जो दिए गए ज्ञान को ग्रहण करके उपयोग कर लें, तो हमें आकलन की वह प्रणाली विकसित करनी होगी, जिसमें दिए गए ज्ञान में नए विचारों का प्रवेश करने की मनाही हो, लेकिन यदि हम विद्यार्थियों को ऐसे व्यक्तियों के रूप में विकसित होते देखना चाहते हैं जिनमें ज्ञान के सृजन की क्षमता और चेतना हो तो हमें एक भिन्न प्रकृति की आकलन प्रणाली की ज़रूरत होती है।

औपनिवेशिक काल में औपनिवेशिक शासन की अपनी प्रजा से व्यवहार-गत उम्मीदें अत्यंत सीमित थीं इसलिए दिए गए पाठ की सीमा का अतिक्रमण करना दंडनीय माना जाता था। दंडित करने का औज़ार परीक्षाएँ होती थीं, जिनमें दी गई सूचनाओं को याद कर लेने की क्षमता और आदत का मूल्यांकन किया जाता था। इसलिए आकलन प्रणाली का मूल्यांकन उन उद्देश्यों की रोशनी में होना चाहिए जो वर्तमान में शिक्षा के लिए तय किए गए हैं। आज़ाद भारत में एक अच्छी आकलन प्रणाली को 'सीखने की प्रक्रिया' का अभिन्न अंग होना चाहिए। उसमें यह सामर्थ्य होनी चाहिए कि उससे विद्यार्थी, शिक्षक, शिक्षा-व्यवस्था, पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पढ़ने-पढ़ाने के तरीकों के लिए कुछ संदेश मिलें और साथ-ही-साथ शिक्षिका/शिक्षक, पाठ्यचर्या निर्माता, पाठ्यक्रम निर्माता एवं नीति-निर्माता एवं अभिभावक उन संदेशों को समझकर उपयोग में लाएँ।

> औपनिवेशिक काल में विद्यालयी शिक्षा की रचना नौकरशाही के लिए लिपिक (क्लर्क) पैदा करने हेतु की गई थी। जो कुछ पढ़ाया जाता था और परीक्षा के उपरांत जो उपाधि दी जाती थी, वह सामान्यत: एक नियत पाठ्यपुस्तक से पढ़े गए संकीर्णता से परिभाषित विषय-वस्तु का अनुपालन और प्रवीणता थी। प्रश्न करने की प्रवृत्ति खतरनाक थी और औपनिवेशक राज्य के लिए ज़रूरी दक्षताओं के अलावा अन्य दक्षताओं की शिक्षा गैरज़रूरी थी।
>
> — परीक्षा प्रणाली में सुधार, आधार पत्र (2.5) 2008.3.

आकलन में केवल निर्णय नहीं होना चाहिए, बल्कि निर्णय को समझने में मदद करने वाले सूत्र भी होने चाहिए। शिक्षक/शिक्षिका को चाहिए कि वे विद्यार्थी के लिखे या कहे

पर सार्थक टिप्पणी करें, जिसके सहारे विद्यार्थी अपना स्वमूल्यांकन करते हुए स्वयं को बेहतर बना सकते हैं। इसलिए आकलन के नाम पर अंक दे देने से नए समय की चुनौतियों का सामना नहीं किया जा सकता। 'बिना अंक' दिए भी बच्चों का इन क्षेत्रों में विकास के लिए आकलन किया जा सकता है। भागीदारी, रुचि, और जुड़ाव तथा जिस स्तर तक क्षमताओं एवं कौशलों का विकास हुआ, ये कुछ सूचक हैं जिनके आधार पर शिक्षक यह समझ बना सकते हैं कि बच्चों को इन गतिविधियों से कितना फायदा हुआ है। बच्चों को अगर अपने अधिगम के बारे में खुद बताने के लिए कहा जाए तो उससे भी शिक्षकों में बच्चों की शैक्षिक उन्नति संबंधी अंतर्दृष्टि विकसित होगी और पाठ्यचर्या एवं शिक्षाशास्त्रीय सुधार करने के आधार मिलेंगे। (एन.सी.एफ़. 84)।

एक शिक्षक की साप्ताहिक डायरी से लिया गया अंश

किरण को अपने काम में मज़ा आया। उसको वे किताबें फ़ौरन पसंद आईं जो छोटी थीं और जिनमें जानकारी थी। वह कहता है कि उसे साफ़ और सादी भाषा पसंद है। तथ्यों को लिखते हुए वह अकसर संक्षिप्त उत्तर लिखता है। उसका कहना है कि इससे वह चीज़ों को आसानी से समझ पाता है। उसे व्यावहारिक तरीका पसंद है। इसी तरह विभिन्न स्तर पर बच्चों के काम और उनके बारे में लिखने से शिक्षार्थी और शिक्षक को उसके अधिगम की प्रगति का व्यवस्थित रिकॉर्ड मिल जाता है।

10.1.2 सतत और समग्र आकलन

सतत और समग्र आकलन के विचार को समझने के लिए इस विचार का वैकल्पिक विचार मददगार होता है। सतत और समग्र आकलन का विकल्प होगा असतत और आंशिक आकलन। सतत में आकलन सीखने की प्रक्रिया के साथ यात्रा करता है जबकि असतत में सीखना और आकलन भिन्न समय बिंदुओं पर घटने वाली दो घटनाएँ है। समग्र आकलन में व्यक्तित्व के विकास के विविध पहलुओं का आकलन करने पर बल दिया जाता है। सतत आकलन में आकलन तथा सीखने-सिखाने के बीच समय तथा प्रक्रिया की दृष्टि से भिन्नता नहीं होती। इस संदर्भ में सतत और समग्र आकलन का अर्थ है– आकलन सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में साथ-साथ चलने वाली समेकित प्रक्रिया, जिसमें व्यक्तित्व के विविध पक्षों का आकलन किया जाता है। विविध पक्षों से आशय है— शरीर क्रियात्मक पक्ष *(psychomoter domain)*, संज्ञानात्मक पक्ष *(cognitive domain)* तथा भावात्मक पक्ष *(affective domain)*। सतत और समग्र आकलन का उद्देश्य 'विद्यार्थी को क्या आता है?' की जाँच न होकर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को बेहतर बनाना है। बेहतर बनाने का अर्थ है कि उद्देश्यों की प्राप्ति सहजता से कर पाना तथा उद्देश्यों को

भी बेहतर बनाना। इस काम में शिक्षक की सक्रिय तथा समझदार भूमिका अत्यंत आवश्यक है। सतत और व्यापक आकलन में प्रक्रिया और उत्पाद दोनों को मूल्यवान समझा जाता है। इसमें क्या सीखा और कैसे सीखा, दोनों पर ध्यान दिया जाता है।

> आकलन की भूमिका बच्चों की मौलिकता और भाषा प्रयोग में उनकी सृजनात्मकता को पैना बनाना है।

सतत एवं समग्र आकलन के उद्देश्य

- समय-समय पर विद्यार्थी की उपलब्धि, प्रदर्शन तथा समझदारी के स्तर में सुधार करना।
- विद्यार्थी की उपलब्धि एवं प्रदर्शन में सुधार हेतु उपयुक्त तरीकों की पहचान तथा उपयोग करना।
- वर्ष में एक या दो बार ली जाने वाली परीक्षा के कारण विद्यार्थी पर पड़ने वाले दवाब को कम करना।
- आकलन में व्यक्तित्व के तीनों पहलुओं– यानी शरीर क्रियात्मक पक्ष, संज्ञानात्मक तथा भावात्मक पहलू– को शामिल करना।
- व्यक्तित्व के उन पक्षों की पहचान कर, विकसित करना जिनकी पहचान साल में एक बार ली जाने वाली परीक्षा यानी योगात्मक आकलन *(summative assessment)* द्वारा संभव नहीं है।
- सीखने-सिखाने की कठिनाइयों का निदान तथा उपचार करने में शिक्षक की मदद करना।
- शिक्षक/शिक्षिकाओं की शोध-दृष्टि का विकास करने में मदद करना।

सतत एवं समग्र आकलन में विद्यार्थी के अकादमिक तथा गैर-अकादमिक पक्षों का आकलन किया जाता है। यानी लिखने, याद करने की दक्षता आदि के साथ-साथ उसकी प्रवृत्ति, अभिवृत्ति, रुचि आदि का भी आकलन किया जाता है। इस प्रकार के आकलन में इस बात को समझने की कोशिश होती है कि विद्यार्थी विभिन्न संदर्भों में किस प्रकार का प्रदर्शन करता है। कोई विद्यार्थी किसी 'क' बच्चे के साथ सहयोग के व्यवहार का प्रदर्शन करता है, लेकिन 'ख' बच्चे के साथ नहीं। सतत एवं समग्र आकलन में शिक्षक विद्यार्थी द्वारा इन दो भिन्न संदर्भों में किए जा रहे भिन्न व्यवहारों के कारणों का पता लगाकर उपचार की रणनीतियाँ सोचेगा, उनका उपयोग करेगा तथा उनके प्रभाव की जाँच करेगा।

सतत एवं समग्र आकलन में योजन की आवश्यकता, विचार, क्रियान्वयन तथा आकलन कई स्तरों एवं संदर्भों में चलता रहता है।

10.1.3 निर्माणात्मक और योगात्मक आकलन

आकलन किसी कार्यक्रम के सापेक्षिक विकास को समझने की प्रक्रिया है। किसी कार्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कोई योजना बनाई जाती है। योजना के क्रियान्वयन हेतु रणनीतियाँ तैयार की जाती हैं। रणनीतियों के क्रियान्वयन के लिए कुछ स्थितियाँ होती हैं। इन तमाम चरणों से गुज़रकर यह जानना ज़रूरी हो जाता है कि अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति में योजना तथा रणनीतियाँ किस सीमा तक कारगर रही हैं। इस प्रकार आकलन द्वारा वास्तविक प्रभाव तथा योजनागत रणनीतियों के बीच तुलना की जाती है। यानी उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किए गए प्रयासों का वास्तव में क्या असर पड़ा है। उदाहरण के लिए भाषा-शिक्षण के एक उद्देश्य पर विचार करें। विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाने का एक उद्देश्य है– 'निजी अनुभव पर आधारित भाषिक सृजनशीलता का विकास।'

उपरोक्त उद्देश्य के आकलन का अर्थ है इस उद्देश्य के संदर्भ में विद्यार्थी से अपेक्षित तथा विद्यार्थी की वास्तविक स्थिति के बीच दूरी या नज़दीकी का आकलन करना। आकलन की योजना बनाते समय निजी अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में भाषिक सृजनशीलता को स्पष्ट करना तथा स्पष्टता के अनुकूल आकलन के तरीकों को निश्चित करना होता है। अब तक आकलन हेतु योगात्मक आकलन को व्यापक स्वीकृति प्राप्त थी। इस प्रकार के आकलन में किसी निश्चित समय पर अपेक्षित उद्देश्यों की कसौटी पर विद्यार्थी के विकास का आकलन किया जाता है। इसमें तय विषय-वस्तु के लिए सीखने-सिखाने की सोची गई प्रक्रियाओं से गुज़ारने के बाद विद्यार्थियों की लिखित परीक्षा ली जाती है तथा शिक्षक अंक देते हैं। परीक्षा का उद्देश्य उस निश्चित समय तक 'सीखे का' समेकित आकलन करना होता है।

योगात्मक आकलन में मुख्यत: विद्यार्थी के संज्ञानात्मक पक्षों के विकास का ही आकलन किया जा सकता है। बोर्ड की परीक्षा योगात्मक आकलन का उदाहरण है। स्कूल में ली जाने वाली छमाही व वार्षिक परीक्षा भी इसका एक अन्य उदाहरण हैं।

योगात्मक आकलन में मानकीकृत तरीकों का उपयोग किया जाता है, क्योंकि इनको विद्यार्थियों के अपेक्षाकृत बड़े समूह पर क्रियान्वित किया जाता है। इसमें समय, समय-सीमा, विषय-वस्तु, स्थान की निश्चितता होती है।

व्यापक स्वीकृति के बावजूद योगात्मक आकलन की दो बड़ी कमज़ोरियाँ हैं—

पहली— इसमें विद्यार्थी को सुधार के अवसर बहुत कम मिलते हैं, तथा

दूसरी— इसमें विद्यार्थी के व्यक्तित्व के एक पक्ष, संज्ञानात्मक पक्ष का ही आकलन किया जा सकता है, जिसके कारण दो पक्ष उपेक्षित रह जाते हैं।

उपरोक्त दो कमज़ोरियों को दूर करने के मकसद से योगात्मक के साथ-साथ निर्माणात्मक (रचनात्मक) आकलन (*formative assessment*) के विचार को अपनाने

पर बल दिया जा रहा है। शिक्षिका द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले आकलन के औपचारिक और अनौपचारिक तरीके, जिन्हें वह शिक्षण के दौरान उपयोग में लाती है– इसका उद्देश्य पढ़ाने तथा सीखने की स्थितियों और गतिविधियों में सुधार करना है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वे तमाम तरीके जिनका उपयोग शिक्षक तथा विद्यार्थी, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सुधारने हेतु अपनाते हैं, निर्माणात्मक आकलन के अंतर्गत आते हैं।

योगात्मक आकलन के विपरीत निर्माणात्मक आकलन में गुणात्मक प्रतिपुष्टि (qualitative feedback) दिया जाता है। इसमें मात्रा के स्थान पर गुण केंद्र में होता है। यानी 'कितना सीखा' की बजाय 'सीखने की प्रकृति' महत्वपूर्ण होती है।

योगात्मक आकलन तथा निर्माणात्मक आकलन के बीच एक और महत्वपूर्ण अंतर यह है कि योगात्मक में 'सीखे का' आकलन किया जाता है, जबकि निर्माणात्मक में 'सीखने के लिए' का आकलन करना होता है।

10.1.4 आकलन संबंधी दृष्टि

निर्माणात्मक तथा योगात्मक शब्दावली का उपयोग पहली बार माइकेल स्क्रीवन *(Michael Scriven)* ने 1967 में किया। 1968 में बेंजामिन ब्लूम *(Benjamin Bloom)* ने इस शब्दावली का उपयोग अपनी किताब 'लर्निंग फॉर मास्टरी' में किया। इसके बाद 1971 में ब्लूम ने अन्यों के साथ मिलकर एक पुस्तक लिखी 'हैंडबुक ऑफ़ फ़ॉरमेटिव एंड सम्मेटिव इवैल्युएशन'। इसमें उन्होंने लिखा कि निर्माणात्मक आकलन को अनुदेशन इकाइयों के साथ जोड़ा जा सकता है, यानी किसी पाठ या संकल्पना को इकाइयों में बाँटा जाए और उनका आकलन निर्माणात्मक तरीकों से किया जा सकता है। माइकेल और ब्लूम दोनों का मानना है कि आकलन निर्माणात्मक तब होता है जब आकलन का उपयोग लिए जाने वाले शैक्षिक फ़ैसलों को बदलने में किया जाता है।

कक्षा में उपयोग में लाई जाने वाली कोई गतिविधि निर्माणात्मक होती है यदि उससे विद्यार्थी की उपलब्धि के विषय में मिलने वाले प्रमाण, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के बारे में प्रमाणों की अनुपस्थिति की तुलना में बेहतर फ़ैसले लेने में मदद करें। यानी पढ़ाने के तरीकों, उपयोग में लाई गयी गतिविधियों आदि की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता के बारे में फ़ैसला प्रमाणों की उपस्थिति में किया जा सकता है, लेकिन निर्माणात्मक आकलन शिक्षक को सही फ़ैसले लेने हेतु प्रमाण उपलब्ध करवाने का ज़रिया होने के कारण बेहतर तरीका है।

(स्रोत—http://en.wikipedia.org/wiki/formative_assessment#cite_note.Bloom Hast mad_1971-10)

भारत में सतत और समग्र आकलन की अवधारण काफ़ी पुरानी है। इस बात की तरफ़ लगातार ध्यान दिलाया जाता रहा है कि स्कूल में आकलन पर निर्भरता को कम किया जाना चाहिए। कोठारी आयोग ने आकलन में संज्ञानात्मक और सह-संज्ञानात्मक दोनों पक्षों को शामिल करने की सिफ़ारिश की। 'प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का प्रारूप–1988' (एन. सी. एफ. – 1988)* द्वारा आकलन के तरीकों को सुधारने की निम्नलिखित सिफ़ारिशें कीं—

- आकलन के दायरे में शारीरिक क्रियात्मक पक्ष तथा समाजिक-भावात्मक गुणों को भी शामिल किया जाए।
- आकलन की निगाह शिक्षा में गुणात्मक सुधार पर होनी चाहिए।
- अंकों की बजाय ग्रेड्स का उपयोग किया जाए।
- विद्यार्थियों के उपलब्धि स्तर में सुधार हेतु प्रतिपुष्टि तंत्र विकसित किया जाए।
- आकलन के विभिन्न उपकरणों, तकनीकों तथा तरीकों का उपयोग किया जाए जैसे— लिखित परीक्षण, मौलिक परीक्षण, अवलोकन तालिका, साक्षात्कार, संस्मरण उपाख्यानात्मक रिकॉर्ड *(anecdotal records),* आकलन के वैयक्तिक तथा समूह तरीके, पोर्टफ़ोलियो आदि।
- लिखित परीक्षा की आवश्यकता को कम करके वैकल्पिक तरीकों को अपनाया जाए।
- सतत आकलन के ज़रिये निदान और उपचार के तरीकों को अपनाया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में सतत और समग्र आकलन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 (रा.शि.नी.-1986) के पैरा 8.23 में आकलन का उद्देश्य शिक्षा में गुणात्मक सुधार बताया गया है। पैरा 8.24 में परीक्षा प्रणाली में सुधार हेतु नीति तय की गई है। नीति के अनुसार परीक्षा प्रणाली में सुधार का व्यावहारिक अर्थ—

(क) ऐसा सतत और समग्र आकलन जो अकादमिक और सह-अकादमिक पहलुओं को शामिल करे और जिसका फैलाव अनुदेशन के पूरे समय में हो।

(ख) रटने को हतोत्साहित किया जाए।

(ग) अंकों की जगह ग्रेड्स का उपयोग किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 की नीति तथा *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का प्रारूप–1988* में आकलन संबंधी सिफ़ारिशों को, *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में विस्तार से रखा गया है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पूर्ववर्ती प्रस्तावों से भिन्न है। इसमें सीखने को दक्षताओं तथा उप-दक्षताओं में तोड़ने के पूर्ववर्ती विचारों को नकारा गया है। साथ ही इस बात की भी खिलाफ़त की गई है कि शिक्षा पूर्व-निर्धारित परिणामों के लिए दी जानी चाहिए। इसमें कहा गया है कि– अधिगम के परिणामों के लिए पढ़ाना बिलकुल ही अव्यावहारिक है और शिक्षाशास्त्रीय नज़र से अविश्वसनीय भी है। (पृ. 82)। पाठ्यचर्या में आगे कहा गया है कि बच्चे की अधिगम की गुणवत्ता और विस्तार पर लिखी गई एक सार्थक रपट को समावेशी होना चाहिए। हमें एक ऐसी पाठ्यचर्या की आवश्यकता है, जिसमें सृजनात्मकता, नवप्रवर्तकता और बालक का संपूर्ण विकास हो तो ऐसे में पाठ्यपुस्तक-आधारित अधिगम और रटे हुए तथ्यों को जाँचने वाले परीक्षण, दोनों ही बेकार हैं। हमें मूल्यांकन और प्रतिपुष्टि को पुन: परिभाषित करने और उनके नए मानक ढूँढ़ने की ज़रूरत है। विशिष्ट विषयों में शिक्षार्थियों की उपलब्धि का बड़े आराम से परीक्षण हो जाता है। उसके अलावा हमें आकलन में सीखने के प्रति अभिवृत्तियों, रुचि और स्वयं सीखने की क्षमता को भी शामिल करना होगा। (पृ. 82-83)।

इसलिए सतत और समग्र आकलन के संदर्भ में झगड़ा यह भी है कि आकलन दक्षताओं का किया जाए या समग्रता का।

भाषा-शिक्षण में सतत और समग्र आकलन

भाषा के शिक्षण में सतत और समग्र आकलन के विचार उपयोग करने से पहले यह समझना आवश्यक है कि भाषा के शिक्षण के क्षेत्र में अकादमिक (scholastic) और सह-अकादमिक (co-scholastic) पहलू कौन-से हैं। इन पहलुओं से संबद्ध अपेक्षाओं को व्यावहारिक उद्देश्यों के रूप में व्यक्त करने से समझने में आसानी होगी, इसलिए यहाँ पर दोनों से कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

भाषा-शिक्षण के संदर्भ में अकादमिक पक्ष यानी संज्ञानात्मक पक्ष के उदाहरण—

- पाठ पढ़ने के बाद विद्यार्थी शब्दों के अर्थ बता पाएँगे।
- विद्यार्थी पठित पद्यांश का अर्थ समझा सकेंगे।
- विद्यार्थी पठित गद्यांश का अर्थ समझा सकेंगे।
- विद्यार्थी 'संज्ञा' का अर्थ तथा भेद बताकर उदाहरण दे सकेंगे।
- विद्यार्थी दी गई स्थिति पर गद्य या पद्य की रचना कर सकेंगे।
- विद्यार्थी मानक वर्तनी के अनुसार लिख सकेंगे।
- विद्यार्थी पाठ पर आधारित प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

- विद्यार्थी कहानी की घटनाओं को सही क्रम में लगा सकेंगे।
- विद्यार्थी मुहावरों का उपयोग करते हुए दिए गए या अपनी इच्छा के विषय पर अनुच्छेद लिख सकेंगे।
- विद्यार्थी दिए गए विषय पर जानकारियाँ एकत्रित कर प्रस्तुत कर सकेंगे।

अकादमिक पक्षों का आकलन करना अपेक्षाकृत सरल है, क्योंकि इनके संदर्भ में व्यवहार में आए बदलावों की पहचान करना अपेक्षाकृत सरल है। अकादमिक पहलुओं के आकलन के लिए निम्नलिखित तरीकों का उपयोग किया जा सकता है—

(क) परियोजना कार्य

(ख) सर्वे

(ग) अवलोकन

(घ) प्रश्न पूछना

(ड.) परीक्षण

(च) अवलोकन सारणी

भाषा शिक्षण के संदर्भ में सह-अकादमिक पक्षों के उदाहरण

भाषा शिक्षण के संदर्भ में सह-अकादमिक पक्षों का संबंध, सीखने के प्रति भावनाओं से है। रुचि, अभिवृत्ति, तारीफ़ करना, स्वीकार या अस्वीकार करना आदि सीखने की भावना से संबंधित हैं।

सह-अकादमिक पक्षों के उदाहरण—

- विद्यार्थी भाषा के सृजनात्मक उपयोग के प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हैं।
- विद्यार्थी निजी अनुभवों को द्वितीयक अनुभवों के संदर्भ में समझने के प्रति रुचि रखते हैं।
- विद्यार्थी भाषायी विविधता के प्रति संवेदनशील हैं।
- विद्यार्थी पुस्तकालय से चुनकर अच्छी किताबें पढ़ते हैं।
- विद्यार्थी सहपाठियों के विचारों को धैर्यपूर्वक सुनते हैं।
- विद्यार्थी मज़बूत तर्क, सृजनात्मक अभिव्यक्ति की प्रशंसा करते हैं।

उपरोक्त पक्षों का संबंध उन बातों से है जिन्हें विद्यार्थी करता है। इनके आकलन हेतु शिक्षक का विद्यार्थियों के साथ गहरा संबंध होने के साथ शिक्षक की विद्यार्थियों से वस्तुनिष्ठ दूरी भी अपेक्षित है।

10.1.5 शिक्षक/शिक्षिका की भूमिका

सतत और समग्र आकलन, सीखने की प्रक्रिया को समझने हेतु महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। सीखने को उत्पाद की बजाय प्रक्रिया मानने के विचार को शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। इसमें क्या सीखा है के साथ-साथ सीखने के तरीकों को भी महत्व दिया जाता है। सीखने का अर्थ है, सीखने के तरीकों को सीखना, यानी ऐसे तरीकों को सीखना जिनके सहारे कई अन्य समान बातों को किया जा सके। सतत और समग्र आकलन स्कूल-आधारित होने के कारण शिक्षक/शिक्षिका से माँग करता है कि वे पेशेवर हों। पेशेवर होने का अर्थ है कि उनके द्वारा किया गया आकलन तथ्यों पर आधारित हो। इस उद्देश्य की दृष्टि से शिक्षक/शिक्षिका से निम्नलिखित अपेक्षाएँ की जा सकती हैं—

- आकलन के विविध उपकरणों जैसे— मौखिक परीक्षण, लिखित परीक्षण, प्रस्तुतीकरण, परियोजना कार्य, भूमिका निर्वाह, प्रश्न, अवलोकन, रेटिंग स्केल, विषय-वस्तु विश्लेषण, पोर्टफ़ोलियो आदि का उपयोग करने की समझ।
- सीखने के विविध तरीकों तथा क्षमताओं को समझना।
- आकलन के मानदंडों पर साथी शिक्षकों से चर्चा करना।
- विद्यार्थियों को समूह-आकलन के अवसर उपलब्ध करवाना।
- विद्यार्थियों को स्वयं में सुधार के अवसर प्रदान करना।

उर्पयुक्त बातों को ध्यान में रखकर शिक्षक/शिक्षिका द्वारा प्रगति-पत्र तैयार किया जाता है।

प्रगति-पत्र (रिपोर्ट कार्ड) तैयार करने से शिक्षक को अपने प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में यह सोचने का मौका मिलता है कि उसने सत्र के दौरान क्या सीखा और किस क्षेत्र में उसको ज़्यादा मेहनत करने की ज़रूरत है। ऐसे रिपोर्ट कार्ड को लिख पाने के लिए शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में सोचना होगा और इसीलिए रोज़मर्रा के शिक्षण के दौरान उस पर ध्यान देना होगा। (पृष्ठ. 83)।

10.1.6 चुनौतियाँ

भारतीय स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में सतत एवं समग्र आकलन को प्रचारित करने तथा वैधता प्रदान करने के प्रयास किए जा रहे हैं। इन प्रयासों को क्रियान्वित करने हेतु अपनाई जा रही रणनीति में कुछ सैद्धांतिक तथा कुछ प्रशासनिक खामियाँ हैं।

सैद्धांतिक रूप से अकादमिक तथा गैर-अकादमिक क्षेत्रों को मीडिया द्वारा सबसे अलग मानने का क्या आधार है? गांधी जी द्वारा प्रस्तावित, 'बुनियादी शिक्षा' के ढाँचे के आधार पर इस विभेदीकरण को खारिज किया जा सकता है। 'बुनियादी शिक्षा' के केंद्र में

हाथ से किए जाने वाले किसी काम को रखा गया है। उस काम के सहारे समझ और भावनाओं का निर्माण होता है। 'बुनियादी शिक्षा' में हाथ के काम तथा दिमाग के काम को दो क्षेत्र नहीं माना गया है।

अकादमिक तथा गैर-अकादमिक के बीच विभेदीकरण को जनसंचार माध्यमों की भूमिका के आधार पर भी खारिज किया जा सकता है। किसी बच्चे के गहरे गड्ढे में गिर जाने के दृश्यों के लगातार प्रसारण से लोगों में उस बच्चे के प्रति संवेदनाएँ पैदा की जाती हैं। लगातार मिलने वाली सूचनाएँ नयी भावनाओं को पैदा करने में सहायक होती हैं। अगर ऐसा कहना सही है तो संज्ञान (सूचना) तथा भावना को दो भिन्न क्षेत्र मानना कहाँ तक उचित है? जब भाषा का शिक्षण साहित्य के ज़रिये किया जा रहा हो तो इस प्रकार का विभेदीकरण और भी मुश्किल हो जाता है, क्योंकि साहित्य भावनाओं को उत्प्रेरित करता है। पात्रों के प्रति भावनात्मक होकर ही कथानक में उन पात्रों का अस्तित्व समझ में आ सकता है। साहित्य के संदर्भ में समझ और भावना को दो भिन्न इकाइयों में बाँटना कहाँ तक उचित है, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

स्वआकलन और सहपाठी आकलन

शाहिद के हाथ में जैसे ही उसकी कॉपी आई, उसने उत्सुकता के साथ उसे खोला। पन्ने पलटते हुए वह उस जगह पहुँच गया, जिस जगह की जाँच करके शिक्षिका ने उसे कॉपी लौटाई थी। कॉपी के उस पन्ने पर शिक्षिका के हस्ताक्षर के पास लाल पेन से लिखा हुआ था, सुधार की ज़रूरत है। यह पढ़ते ही शाहिद का उत्साह ठंडा पड़ गया। वह कॉपी लेकर अपनी जगह पर पहुँच गया। उसने पूछा– "दिखा तेरी कॉपी पर क्या लिखा है।" ज़ाहिद से कॉपी लेकर उसने भी पढ़ा सुधार की ज़रूरत है। दोनों मिलकर सुधार की ज़रूरत है का मतलब समझने लगे। उन्होंने कुछ देर तक माथामच्ची की, लेकिन जल्दी ही थक गए।

- क्या आप इन बच्चे-बच्चियों की मदद कर सकते/सकती हैं?
- शाहिद की कॉपी पर ऐसा क्या लिखा जाता कि जिससे उसको अपना आकलन करने में सहायता मिलती?
- शाहिद की कॉपी में ऐसा क्या लिखा जाता कि उसके साथी शाहिद की मदद कर पाते?
- कॉपी जाँचने से पहले शिक्षिका को क्या-क्या करना चाहिए था, ताकि शाहिद को अपनी क्षमताओं के मज़बूत तथा कमज़ोर पक्षों का पता चल जाता?
- कॉपी जाँचने से पहले शिक्षिका को क्या-क्या करना चाहिए था, ताकि ज़ाहिद और शाहिद दोनों मिलकर आगे की योजना बना पाते?

शाहिद की कॉपी पर लिखा गया वाक्यांश 'सुधार की ज़रूरत है' रहस्यवाद के कोहरे में लिपटा हुआ है। यह वाक्यांश इस पर मौन है कि शाहिद को किस प्रकार के सुधार की ज़रूरत है, शाहिद के साथ-साथ सहपाठी भी परेशान हो रहे हैं। यदि वे सुधार करने के इच्छुक हों तो उनको अपनी दिशा एवं दशा का पता नहीं है। क्या सीखने-सिखाने की निर्माणात्मक स्थितियों के पैमाने पर ऐसी कक्षा को अच्छी कक्षा कहा जा सकता है?

क्या आपको नहीं लगता कि शाहिद जैसे तमाम विद्यार्थियों को पता चलना चाहिए कि वे आगे से किस दिशा में कितना प्रयास करें? ऐसा कैसे हो सकता है? इसके अनेक तरीके तथा रणनीतियाँ हो सकती हैं। आइए, हम एक रणनीति पर विचार करते हैं? इस रणनीति के एक से अधिक चरण हो सकते हैं।

चरण एक — कॉपियों की जाँच के लिए कुछ मानदंडों को तय करना तथा प्रत्येक मानदंड के लिए आनुपातिक अंक तय करना।

चरण दो — मानदंडों तथा आनुपातिक अंक के विचार को विद्यार्थियों के साथ साझा करना और आवश्यकतानुसार सुधार करके उनको अंतिम रूप देना।

चरण तीन — कॉपियों की जाँच में चरण दो का उपयोग करना।

चरण चार — कॉपियाँ विद्यार्थियों को लौटाकर उनसे प्रतिपुष्टि लेना।

चरण पाँच — प्रतिपुष्टि के आधार पर कॉपियों की जाँच में सुधार करना।

कोई शिक्षक/शिक्षिका कॉपियों की जाँच हेतु नीचे दिया जा रहा खाका बना सकते/सकती हैं। वे जाँच के लिए पाँच मानदंडों का चुनाव कर सकते/सकती हैं। जैसे—

1. भाषा की रचनात्मकता
2. विषय-वस्तु की स्पष्टता
3. विचारों की नवीनता और तार्किकता
4. लेख
5. समय की पाबंदी

उपर्युक्त पाँच मानदंडों के लिए निम्नलिखित खाके हो सकते हैं। प्रतिशत में दिए गए अंक पाँच मानदंडों पर उनको दिए गए महत्व को दर्शाता है —

खाका —1

क्र. सं.	नाम	भाषा की रचनात्मकता 25%	विषयवस्तु की स्पष्टता 25%	विचारों की नवीनता और तार्किकता 25%	लेख 10%	समय की पाबंदी 15%	कुल%
1							
2							
3							

खाका — 2

क्र. सं.	नाम	भाषा की रचनात्मकता 25%	विषयवस्तु की स्पष्टता 25%	विचारों की नवीनता और तार्किकता 25%	लेख 10%	समय की पाबंदी 15%	कुल%
1							
2							
3							

शिक्षक/शिक्षिका अपने बनाए गए खाके के अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी के लिए उसकी कॉपी पर सबसे ज़रूरी टिप्पणी कर सकते/सकती हैं। बाकी खाके के विद्यार्थियों के अवलोकन हेतु उपलब्ध करवा सकते/सकती हैं। इससे विद्यार्थियों को स्वमूल्यांकन में मदद मिलने के साथ-साथ स्वयं के लिए योजना बनाने में मदद मिलेगी।

खाके का उपयोग सहपाठी-मूल्यांकन हेतु भी किया जा सकता है। किसी विद्यार्थी की कॉपी के एक अंश की फ़ोटोकॉपी कीजिए। विद्यार्थियों को समूह में बाँटकर प्रत्येक समूह को एक फ़ोटोकॉपी दीजिए। उनसे कहिए कि वे दिए गए मानदंडों के आधार पर दिए गए अंश का मूल्यांकन करें। उनके द्वारा किए गए मूल्यांकनों की प्रस्तुति करवाकर उन पर चर्चा करके उनकी रचनाशीलता, नवीनता आदि पक्षों पर समझदारी को विकसित होने का अवसर दिया जा सकता है।

स्वआकलन तथा सहपाठी आकलन, निर्माणात्मक आकलन के हिस्से हैं। किसी सृजनात्मक कक्षा के लिए ये दोनों प्रकार के आकलन उपयोगी होते हैं। सृजनात्मक कक्षा में विद्यार्थियों की सक्रिय एवं सार्थक भागीदारी आवश्यक होती है। स्वआकलन तथा सहपाठी आकलन तथा सृजनात्मक कक्षा के परस्पर संबंधों को निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है —

(क) विद्यार्थियों की भागीदारी का बढ़ना

(ख) विद्यार्थियों के बीच अंतरक्रिया तथा विश्वास का बढ़ना

(ग) वैयक्तिक पृष्ठ पोषण का बढ़ना

(घ) उत्पाद की बजाय प्रक्रिया को महत्व देना

10.1.7 पोर्टफ़ोलियो

सतत एवं व्यापक आकलन में सीखना तथा मूल्यांकन साथ-साथ चलते हैं। इसके अंतर्गत विद्यार्थी का उसके सापेक्ष भी मूल्यांकन किया जाता है। उसकी विकास यात्रा

को समझना तथा स्वयं विद्यार्थी को समझने में मदद करना सतत एवं व्यापक आकलन के तत्व हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थी द्वारा किए जाने वाले बेहतर कामों को सबूत के तौर पर सँजोकर रखा जाए। विद्यार्थियों की विभिन्न गतिविधियों में से बेहतर हिस्सों को व्यवस्थित करके सँजोना तथा उसे मूल्यांकन हेतु उपयोग में लाना पोर्टफ़ोलियो कहलाता है।

पोर्टफ़ोलियो के लाभ

पोर्टफ़ोलियो एक समय अंतराल में विद्यार्थियों द्वारा किए गए काम का संचित रिकॉर्ड उपलब्ध करवाता है। इसके आधार पर विद्यार्थी अपना मूल्यांकन कर सकते हैं। वे स्वयं विकास यात्रा को विश्लेषित कर सकते हैं। शिक्षक/शिक्षिका इसके माध्यम से विद्यार्थी, अभिभावक तथा प्रशासन से विद्यार्थी द्वारा किए गए बेहतरीन कामों को साझा करके उन्हें विद्यार्थी की प्रगति का अंदाज़ा लगाने में मदद कर सकते/सकती हैं।

अपने अच्छे कामों को दूसरों को दिखाकर तारीफ़ पाने की इच्छा सामान्यत: हर किसी की होती है। विद्यार्थी इसके अपवाद नहीं होते। विद्यार्थी अपने काम को अपने साथियों को दिखाकर उनकी राय लेने के साथ-साथ उनकी प्रशंसा के पात्र भी बनते हैं, पोर्टफ़ोलियो विद्यार्थियों को यह अवसर उपलब्ध करवाता है। विद्यार्थी इस प्रक्रिया में अपनी प्रगति को आँकने में सक्रिय भागीदार बनते हैं।

पोर्टफ़ोलियो तैयार करने के महत्वपूर्ण बिंदु

क्योंकि पोर्टफ़ोलियो में विद्यार्थी के सबसे अच्छे कामों को शामिल किया जाता है, इसलिए शिक्षक/शिक्षिका के सामने यह चुनौती रहती है कि वे किन को पोर्टफ़ोलियो में शामिल करें। जिस किसी लेख, कविता, उत्तर आदि को पोर्टफ़ोलियो में शामिल किया जाए, उनके आधार में स्पष्ट तर्क होने चाहिए।

समय-समय पर पोर्टफ़ोलियो में नयी रचनाओं को शामिल करते रहना चाहिए। किसी विद्यार्थी को उसका पोर्टफ़ोलियो तैयार करने की प्रक्रिया में शामिल करने से स्वमूल्यांकन के तत्व भी शामिल हो जाते हैं।

पोर्टफ़ोलियो एक संग्रह के रूप में होता है। इसमें शामिल सामग्री पर तिथि, शीर्षक देना तथा उनकी एक विषय सूची तैयार करना सार्थक होगा, ताकि उसका उपयोग कर पाना सुगम हो सके।

10.1.8 प्रश्नों का स्वरूप और भूमिका

सीखना तभी संभव होता है, जब व्यक्ति की पहले से उपलब्ध अपनी मानसिक संरचनाओं में परिवर्तन होता है। परिवर्तन के लिए व्यक्ति को ऐसा वातावरण उपलब्ध करवाना होता

है जो उसकी पूर्व-मानसिक संरचनाओं को किसी भी रूप में चुनौती दे। प्रश्नों की भूमिका को सीखना संभव बनाने के इस रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में तलाशने और तराशने की आवश्यकता है।

यदि भाषा-शिक्षण के कुछ उद्देश्य हैं, तो उन उद्देश्यों के संदर्भ में आकलन के किसी विचार को स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है। आकलन के किसी विचार को ठोस रूप देने हेतु प्रश्नों की भूमिका अनिवार्य हो जाती है। प्रश्न दो प्रकार से अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। प्रत्यक्ष भूमिका जिसमें विद्यार्थियों से मौखिक और लिखित रूप में प्रश्न पूछे जाते हैं। अप्रत्यक्ष भूमिका, जिसमें विद्यार्थियों की भाषायी गतिविधियों का अवलोकन किया जाता है तथा अवलोकनों में उभरे भाषायी तत्वों तथा परिप्रेक्ष्य का किन्हीं प्रश्नों के संदर्भ में आकलन किया जाता है।

प्रश्नों का सचेत तथा अचेत रिश्ता अनेक प्रकार की मान्यताओं से होता हुआ सामाजिक अधिसंरचनाओं तक जाता है। अच्छे शिक्षणशास्त्रीय प्रश्न पाठ को केंद्र बनाते हुए भी पाठ के बाहर बच्चे के संचित अनुभवों की विरासत से जुड़ सकते हैं। बच्चों से ऐसे सवाल पूछे जा सकते हैं जिनका जवाब ढूँढ़ने की प्रक्रिया में वे अपनी बौद्धिक तथा भावात्मक क्षमताओं को इस प्रकार संगठित कर सकते हैं, जिससे किन्हीं परिस्थितियों का सामना करने की अंतर्दृष्टि का विकास होता हो। प्रश्नों की प्रकृति इस प्रकार की हो जिससे सामान्य रूप में विषय की तथा विशिष्ट रूप में पाठ की रचना को जीवंत करने में मदद मिले। रचना जीवंत तभी हो सकती है जब उसकी किन्हीं घटनाओं का संबंध सीखने वाले के जीवन से जुड़े या पाठ के कथ्य की रोशनी में समाज के किन्हीं पक्षों पर विचार करने का वातावरण बने। इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि प्रश्नों के पूछे जाने को गतिशील कक्षा तथा लोकतांत्रिक समाज के निर्माण के लिए शिक्षणशास्त्रीय साधन के रूप में सम्मान दिया जाए। प्रश्नों का स्वरूप सोचने की सीमाओं को सिकोड़ या फैला सकता है। प्रश्नों का स्वरूप यह तय कर सकता है कि किसी खास साँचे में ढले प्रश्नों का जीवनकाल बच्चों में तथा बच्चों के समूह में संवाद के विकसित होने का ज़रिया बनेगा या नहीं। ऐसा संवाद, जिसमें बच्चे एक-दूसरे को अनुभवी तथा बौद्धिक व्यक्ति के रूप में देखने-समझने के संस्कार का विकास करेंगे। प्रश्नों का पूछा जाना स्वयं में संस्कार है, जो व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर खास तरह के मूल्य-जाल का विकास करता है।

भाषा की एक विशेषता जो उसे तर्क और प्राकृतिक विज्ञानों से अलग करती है, वह है उसमें निहित स्वतंत्रता का तत्व। इसी के कारण भाषा के शिक्षण में कल्पना का महत्व बढ़ जाता है।

भाषायी तथा शिक्षणशास्त्रीय विमर्श के आधार पर प्रश्नों की निम्नलिखित कोटियाँ बनाई जा सकती हैं। इन कोटियों के तहत पूछे जाने वाले प्रश्नों को निर्माणात्मक (*formative*) तथा योगात्मक (*summative*) मूल्यांकन का आधार बनाया जा सकता है।

प्रश्नों की कोटियाँ

प्रत्येक प्रश्न विद्यार्थियों को कुछ करने के लिए प्रेरित करता है। इस आधार पर प्रश्नों की कुछ कोटियाँ बनाई जा सकती हैं। जैसे—

1. तकनीकी प्रश्न
2. अनुभवपरक प्रश्न
3. चिंतनपरक प्रश्न
4. व्याकरणिक प्रश्न
5. आलोचनात्मक प्रश्न
6. कल्पना विस्तार संबंधी प्रश्न

प्रश्नों की कोटियों का परिप्रेक्ष्य और उदाहरण

तकनीकी प्रश्न— वे प्रश्न जिनका उत्तर पाठ में दर्ज़ होता है। इनके उत्तरों में अर्थगत भिन्नता की गुंजाइश नहीं होती। इनमें वे प्रश्न भी शामिल हैं, जिनका उत्तर पाठ में न होने पर भी उनके जवाब में वस्तुनिष्ठता होती है (जैसे – रिक्त स्थान भरो, मिलान करो आदि)। 'तकनीकी' प्रश्न उस प्रकार की तार्किकता से प्रेरित होते हैं, जिसकी प्रबल रुचि ऐसे मॉडल में रहती है जो निश्चितता तथा तकनीकी नियंत्रण को बढ़ावा देता है; यह पद दक्षता तथा काम निपटाने की तकनीक (*how-to-do techniques*) पर बल देता है। तकनीकी प्रश्नों का शिक्षणशास्त्रीय महत्व तभी है जब ये अन्य कोटियों के अंतर्गत दिये गए या संभावित प्रश्नों पर विचार करने का ज़रिया बनें।

तकनीकी मॉडल की एक पहचान यह है कि उसमें जानने का वैयक्तिक पक्ष खो जाता है। उसमें ज्ञान को वस्तुपरक तथ्यों के रूप में पेश किया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप ज्ञान को व्यक्ति के बाहर मानकर उसे व्यक्ति पर थोपा जाता है। बाह्य मानने के साथ ही ज्ञान तथा व्यक्ति द्वारा अर्थ देने की प्रक्रिया में अलगाव हो जाता है। इसके दो खतरनाक परिणाम निकलते हैं। पहला, ज्ञान क्या है तथा ऐसा ही ज्ञान क्यों है, जैसे सवालों के स्थान पर दिए गए ज्ञान को सीखने के बेहतर तरीके क्या होंगे जैसे तकनीकी सवाल महत्व हासिल कर लेते हैं। दूसरा, तकनीकी मॉडल में कोटियों को स्वनिर्मित या प्राकृतिक तथ्य के रूप में प्रचारित किया जाता है। ऐसा दिखाया जाता है जैसे कोटियों के निर्माण में मनुष्य की कोई भूमिका नहीं होती।

जिन प्रश्नों को तकनीकी प्रश्न की कोटि में रखा गया है उनको इस कोटि में ही क्यों रखा गया है, जबकि इन्हें सामान्य प्रश्न भी कहा जा सकता था? ऐसा करने का कारण वह परिप्रेक्ष्य है जिसका प्रतिनिधित्व इस प्रकार के प्रश्न करते हैं, जिन्हें तकनीकी प्रश्न कहा

गया है, उनको सामान्य प्रश्न कहा जा सकता था यदि सामान्य प्रश्नों के बाद उन प्रश्नों को व्यापक मुद्दों के साथ जोड़कर सामान्य प्रश्नों के जवाब के दौरान जुटाई गई सूचनाओं से मुद्दों पर समझ बनाने की प्रक्रिया रेखांकित हो रही होती। इसके विपरीत तकनीकी प्रश्न किसी विचार प्रक्रिया को शुरू करने में सहायक न होकर सूचना पर ही रुक जा रहे हैं। इसलिए ये प्रश्न सामान्य प्रश्न न होकर तकनीकी प्रश्न हैं, क्योंकि जाने-अनजाने ऐसे प्रश्न या तो ज्ञान के तकनीकी मॉडल पर टिके हैं या ऐसे मॉडल को मज़बूती प्रदान करते हैं। जैसे—

(क) गया कौन था? वह बैलों को अपने साथ क्यों ले गया?

प्रेमचंद द्वारा रचित कहानी 'दो बैलों की कथा' पर तैयार किए गए इन प्रश्नों के उत्तर में विविधता नहीं हो सकती, इसीलिए इन्हें तकनीकी प्रश्नों की कोटि में रखा गया है। इन प्रश्नों के द्वारा विद्यार्थी से इतनी-सी उम्मीद है कि वह पाठ में से उस सूचना को खोज ले जिसमें उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर हो। ऐसे प्रश्नों का मकसद विद्यार्थियों को पाठ में दर्ज़ सूचनाओं से परिचित करवाना होता है।

आमतौर पर जिसे 'समझ' (*comprehension*) कहा जाता है, वह उन बातों की ओर संकेत करता है जो संप्रेषित की जा रही हैं। 'समझ' का अर्थ यह भी लिया जाता है कि व्यक्ति संप्रेषित की जा रही बातों का उपयोग अन्य बातों से जोड़े बिना कर सकता है। (ब्लूम. हैंडबुक II, 1973. पृष्ठ 190)। तकनीकी प्रश्नों को इस परिप्रेक्ष्य में भी समझने की ज़रूरत है कि उनमें पाठ को 'समझने' का क्या अर्थ लिया जा रहा है।

रिक्त स्थान भरने तथा मिलान करने से संबंधित प्रश्नों को तकनीकी प्रश्नों की कोटि में रखा जाना चाहिए, क्योंकि इनके उत्तरों में संरचनागत तौर पर वस्तुनिष्ठता ही संभव है।

अनुभवपरक प्रश्न— वे प्रश्न जिनका उत्तर देने के लिए उत्तरदाता/उत्तरदात्री को व्यक्तिगत अनुभवों के कोश में से संगत अनुभवों को याद करना तथा प्रश्नानुसार उनका संगठन करना होता है। इनमें प्राथमिक अनुभवों तथा द्वितीयक अनुभवों के बीच विभिन्न प्रकार से संबंध (सहमति, विरोध, असहमति, आदि) बनते हैं। दो व्यक्तियों के अनुभवों में सांयोगिक समानता हो सकती है। इनमें घटनाओं का वर्णन करना, सूची बनाना, बीती बातों को याद करने जैसे गुण शामिल होते हैं। इन प्रश्नों के द्वारा विद्यार्थी की परिवेश और अनुभवों के प्रति सजगता को व्यक्त कर सकने की क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। जैसे—

(ख) आपने भी किसी स्थान की यात्रा अवश्य की होगी? यात्रा के दौरान हुए अनुभवों को लिखकर प्रस्तुत करें। (क्षितिज भाग 1, पृष्ठ 30)

इस प्रश्न के द्वारा विद्यार्थियों से यह उम्मीद की जा रही है कि वे अपने द्वारा की गई यात्रा के अनुभवों को व्यक्त कर सकेंगे।

जिन प्रश्नों में वाक्य बनाने के लिए कहा गया है उन्हें अनुभवपरक प्रश्नों की कोटि में रखा जाना चाहिए। इसके तीन कारण हैं—

1. इनमें संरचनागत तौर पर वैचारिक या सूचनात्मक वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा नहीं होती, जो तकनीकी प्रश्नों के उत्तरों से होती है ।
2. इनमें भाषा तथा जीवन के अन्य पहलुओं से संबंधित व्यक्तिगत अनुभवों का उपयोग कर सकने की संभावना होती है।
3. इनके उत्तरों से तार्किक क्रम से गुज़रते हुए किसी प्रकार के परिणाम तक पहुँचने की अपेक्षा नहीं होती, जो चिंतनपरक प्रश्नों के उत्तरों से होती है ।

चिंतनपरक प्रश्न— वे प्रश्न जो उत्तरदाता/उत्तरदात्री को किसी संदेह, चिंता तथा झिझक में डालते हैं तथा संदेहों को दूर करने के लिए खोज की दिशा में प्रेरित करते हैं। इस प्रक्रिया में संदेहों के निराकरण को सही या गलत ठहराने के लिए सार्वजनिक संवाद में पड़ना अपरिहार्य होता है। इस प्रकार के प्रश्न अनुभवों से परिणाम तक की यात्रा करवाते हैं। इस यात्रा का प्रत्येक चरण तार्किक रूप से परस्पर संबद्ध होता है। यह यात्रा ज्ञात बातों से अज्ञात तक की होती है। इन प्रश्नों में तार्किक संबंध बनाना (सहमति, विरोध आदि), पाठ की निचली तहों तक जाना, संकल्पनाओं को स्पष्ट करना, व्याख्या करना, निदर्शन करना (यानी उदाहरण सहित समझाना), तुलना करना, श्रेणियाँ बनाना तथा वस्तुओं या संकल्पनाओं को तार्किक क्रम से लगाने की विशेषताएँ शामिल हैं। जैसे—

(क) पाठ के आधार पर लेखक की भाषा शैली की चार विशेषताएँ बताइए।

(ख) किस शासन की तुलना तम के प्रभाव से की गई है और क्यों?

(ग) 'आग रोटियाँ सेंकने के लिए है, जलाने के लिए नहीं'

- इन पंक्तियों में, समाज में स्त्री की किस स्थिति की ओर संकेत किया गया है?
- माँ ने बेटी को सचेत करना क्यों ज़रूरी समझा?

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तरों को पाठ में आई बातों के आधार पर प्रामाणित करने की आवश्यकता होती है। इनके उत्तर केवल व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर नहीं दिए जा सकते। इस अर्थ में ये अनुभवपरक प्रश्नों से भिन्न होते हैं।

विद्यार्थी को पठित/अपठित पद्यांश/गद्यांश देकर उन पर प्रश्नों का निर्माण करवाया जा सकता है। पद्यांश/गद्यांश इस प्रकार का हो, जिसके आधार पर विविध प्रकार के प्रश्न बनाए जा सकें। इस गतिविधि के द्वारा विद्यार्थियों को अनुभवों तथा पद्यांश/गद्यांश में अंत:क्रिया करने के मौके मिलेंगे। साथ ही शिक्षिक/शिक्षिका को इस बात के संकेत भी मिलेंगे कि अनुभव पाठ को समझने हेतु किन रूपों में महत्वपूर्ण होते हैं।

इस बॉक्स में एक पाठ तथा उस पर पूछे गए प्रश्नों पर चर्चा की गई है। प्रश्नों में तथ्य हैं, समझ है और कल्पना है। पहले कहानी, फिर चर्चा।

व्याकरणिक प्रश्न— वे प्रश्न जो भाषिक संरचना की समझ बढ़ाने, व्याकरणिक नियमों को याद करवाने या उनके अभ्यास के उद्देश्य से बनाए जाते हैं। जैसे—

(क) नीचे दिए गए वाक्यों में से क्रिया-विशेषण और विशेषण छाँटकर अलग लिखिए— (क्षितिज भाग–1. पृष्ठ 39)।

(ख) निम्नलिखित शब्दों से उपसर्ग/प्रत्यय अलग कीजिए और मूल शब्द बताइए—

निराहारी— निर् + आहार + ई
अपनापन
किनारीदार

[क्षितिज भाग–1, (एन.सी.ई.आर.टी.) पृष्ठ –75]।

आलोचनात्मक प्रश्न— वे प्रश्न जो उत्तरदाता को सामाजिक संरचनाओं का परिचय पाने और उन्हें समझने की दिशा में प्रेरित करते हैं। इन प्रश्नों की रचना ऐसी होती है कि इनका उत्तर देना आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक संरचनाओं का संदर्भ लिए बगैर संभव नहीं होता। आलोचनात्मक प्रश्न वे प्रश्न होते हैं, जिनमें किसी सरोकार से संबद्ध बुनियादी मान्यताओं को समझने की कोशिश होती है। इनमें घटनाओं को तात्कालिकता से मुक्त करके उन ऐतिहासिक संदर्भों से जोड़ा जाता है, जिनके साझा प्रभाव का परिणाम वे घटनाएँ होती हैं। जैसे—

(क) जिन मजबूरियों की वजह से मोइना तथा उसका परिवार न तो सुबह और शाम ठीक प्रकार का भोजन कर पाते हैं और न ही पक्के मकान में रह पाते हैं, उन मजबूरियों के बनने के क्या-क्या कारण हो सकते है? इनके लिए आप किन-किन को ज़िम्मेदार ठहराएँगे/ठहराएँगी?

(ख) क्या आपको लगता है कि मोइना को भी देश के अनेक बच्चों की तरह भोजन तथा शिक्षा पाने का हक है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

(ग) मोइना जैसे बच्चे आप ही की तरह के स्कूल में पढ़ सकें इसके लिए किस-किसको क्या-क्या करना होगा?

इन प्रश्नों की रचना में यह उम्मीद शामिल है कि विद्यार्थी पाठ में वर्णित तथा अनुभूत आर्थिक मजबूरियों के विभिन्न रूपों के अनुसार उनके कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे तथा कारणों के संगत समाधान की कल्पना कर सकेंगे।

पाठ की विषय-वस्तु ऐसी है कि उस पर अलोचनात्मक प्रश्न बनाए जा सकते हैं। इस पाठ की बजाय 'किसान की होशियारी' पाठ पर विचार किया जाए तो पता चलेगा कि उस

किसान की होशियारी

एक किसान अपना खेत जोत रहा था, अचानक कहीं से भालू आ गया। भालू किसान को मारने झपटा। किसान ने कहा, "मुझे क्यों मारते हो? फ़सल आने दो, जो कहोगे वही खिलाऊँगा।" भालू ने कहा, "ज़मीन के ऊपर की फ़सल मेरी और नीचे की तुम्हारी रहेगी।" किसान ने आलू बो दिए। फ़सल आई तो भालू ने कहा, "देखो इस बार ज़मीन के नीचे की फ़सल मेरी और ऊपर की तुम्हारी।" किसान ने गेहूँ बो दिया। जब फ़सल तैयार हुई तो किसान को मिले चमकीले गेहूँ। भालू को मिली खाली जड़ें। भालू खीझकर रह गया। इस बार भालू ने किसान को मज़ा चखाना चाहा। उसने किसान से कहा, "ज़मीन के सबसे ऊपर और ज़मीन के नीचे की फ़सल मेरी।" किसान मान गया। इस बार किसान ने गन्ना लगाया। जब फ़सल आई तो भालू को मिले पत्ते और जड़ें। भालू का सिर चकरा गया।"

इस कहानी में शिक्षायी महत्व के अनेक तत्व हैं। अचानक किसी मुसीबत का सामना होने पर मुसीबत के स्वरूप को समझने, उसका सामना करने तथा बुरी स्थिति को पलटने के लिए जिस बौद्धिक तत्परता की आवश्यकता होती है, उसका ज़िक्र इस कहानी में है। कहानी में बौद्धिक तत्परता के लिए सूचनाओं तथा उनके संगठन से बनने वाली समझ का ज़िक्र है। छोटी होने पर भी इस कहानी में एक किस्म का साहित्यिक तनाव है। यह तनाव आगे की स्थितियों का हाल जानने की जिज्ञासा बनाए रखता है। भाषा की भूमिका के स्तर पर यह कहानी श्रोता को भालू या किसान की स्थिति में स्वयं को प्रोजेक्ट करने के रोमांचक अवसर देती है। कहानी में अंतर्निहित कुछ शिक्षायी तत्वों को पाठ्यपुस्तक में इस पर पूछे गए प्रश्नों की मदद से उभारा गया है। इन प्रश्नों में से दो प्रश्न महत्वपूर्ण हैं—

1. भालू किसान से ऐसा क्या कहता कि उसे सारी फ़सल मिल जाती?
2. किसान के पास किस तरह की जानकारी थी, जिसकी मदद से वह भालू से निबट पाया?

प्रश्न (1) के जवाब में तीसरी कक्षा की एक बच्ची ने तत्काल कहा कि "वह (भालू) किसान से कहता कि पहले तू कुछ भी बोले, जब फ़सल पक जाएगी तब मैं बताऊँगा कि मुझे कौन-सा हिस्सा चाहिए।" इस जवाब पर उस बच्ची को कुछ इनाम दिया गया। इस बात को गुज़रे तकरीबन सात महीने हो गए थे। इतने दिनों बाद एक दिन दूसरी कक्षा का वह बच्चा जिसके कोर्स में यह कहानी थी और जो इसको सुनने और प्रश्न (1) का जवाब तलाशने की प्रक्रिया में भागीदार था, मेरे पास आकर बोला "अगर मैं उस सवाल (प्रश्न— 1) का बढ़िया जवाब दूँगा तो तू मुझे भी पैसे देगा?" मेरे हाँ कहने पर वह बोला, "भालू किसान से कहता कि तुम कुछ भी बोलो जो होगा उसका आधा-आधा कर लेंगे।" एक बच्चे ने इस प्रश्न का जवाब सब कुछ अपने अधिकार में ले लेने के विचार से प्रेरित होकर दिया जो कहानी की बुनावट में शामिल है। वहीं दूसरे बच्चे ने समानता के विचार को स्वीकार कर इसका अधिक सहज जवाब ढूँढ़ा। मेरा मानना है कि यह प्रश्न अपनी विशिष्ट प्रकृति की वजह से बच्चे की चेतना में लंबे समय तक जीवित रह सका। (रावत. 2006. 53–54)

पाठ पर आलोचनात्मक प्रश्न नहीं बन सकते, क्योंकि उस कहानी का विवरण चालाकी तथा अनुभव के गुण के आधार पर स्थिति को अपने पक्ष में कर लेने पर केंद्रित है, जबकि महाश्वेता देवी की कहानी 'क्यों-क्यों छोरी' पाठ व्यापक, सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं को समेटे हुए है। इसी कारण इस पाठ पर आलोचनात्मक प्रश्न उठाने के अवसर सहज ही उपलब्ध हैं।

आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र मानता है कि 'भाषा संप्रेषण का माध्यम-मात्र ही नहीं; व्यक्ति-विशेष की पहचान भी है; उसके समुदाय की पहचान भी है; ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम भी है और ज्ञान की संरचना की तालिका भी। भाषा सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का एक विश्वसनीय व सफ़ल साधन है, क्योंकि हम भाषा के बारे में सामाजिक व राजनैतिक ढंग से कभी सोचते ही नहीं इसलिए हमें भाषागत शोषण दिखाई ही नहीं देता।'

एक पति-पत्नी के बीच वार्तालाप का छोटा सा अंश देखिए। प्रात: काल का समय है—

पति — सात बज रहे होंगे।

पत्नी — चाय का पानी रख दिया है। अभी लाती हूँ।

पति — हाँ, अखबार नहीं आया।

पत्नी — अभी लाती हूँ।

पति — चश्मा रखा था कहीं।

पत्नी — अभी देखती हूँ।

हर घर में ऐसी बातचीत हमारे यहाँ रोज़ होती हैं। आप देखिए कि पति हर बार एक स्टेटमेंट (*statement*) देता है। वह न तो प्रश्न पूछता है, न कुछ माँगता है, न आर्डर देता है, न याचना करता है। केवल एक विवरणात्मक वाक्य बोलता है, लेकिन पत्नी हर वाक्य को एक आज्ञा स्वरूप मानती है। वास्तव में पति क्या कह रहा है? कैसा संप्रेषण है यह? अगर कोई आप से पूछे–'सात बज रहे होंगे?' तो उसका स्वाभाविक उत्तर होगा— 'नहीं' अभी छ: बजे हैं या 'सात बजकर दस मिनट हो गये' आदि। पत्नी को मालूम है कि वास्तविक संप्रेषण है— तुम मेरी पत्नी हो इसलिए यह ध्यान रखना पत्नी का काम है कि पति को सात बजे चाय मिले और उसके साथ ही पत्नी उसे अखबार व उसका चश्मा भी दे । वास्तव में इस संवाद की कोई संप्रेषणात्मक आवश्यकता नहीं है। भाषा की दृष्टि से यह केवल एक औपचारिकता है, लेकिन सामाजिक दृष्टि से यह औपचारिकता और नित्य इसका दोहराना विशेष महत्व रखता है। इस संवाद में पत्नी का स्थान एक आज्ञाकारी नौकर से कम नहीं— 'अभी लाती हूँ । अभी देती हूँ।' आदि।

पति का स्थान ऐसा है कि उसे आज्ञा देने की आवश्यकता नहीं। समझदार को इशारा काफ़ी है— 'सात बज रहे होंगे' यानी 'तुम अभी तक चाय क्यों नहीं लाईं।' 'अखबार नहीं आया' यानी 'अखबार कब का आ चुका होगा और तुम अभी तक लाई नहीं', 'चश्मा रखा था कहीं' यानी 'मैं चश्मा कहीं भी रखूँ उसकी देखभाल करना तुम्हारा काम है, चाय और अखबार के साथ चश्मा देना तुम्हारा काम है'। भाषागत औपचारिक संवाद जिस तरह से सामाजिक शोषण को सहारा देता है उसका यह छोटा सा नमूना है। (अग्निहोत्री, 2001)।

कल्पना विस्तार संबंधी प्रश्न— भाषा की एक विशेषता जो उसे तर्क और प्राकृतिक विज्ञानों से अलग करती है वह है उसमें निहित स्वतंत्रता का तत्व। इसी के कारण भाषा के शिक्षण में कल्पना का महत्व बढ़ जाता है। भाषा अन्य तार्किक विधानों से इस रूप में भिन्न है कि इसमें कल्पना का विशेष स्थान है। भाषा के शिक्षण में कल्पना-क्षमता को बढ़ाने पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

पाठ तथा पाठ से इतर परिस्थितियों को बदलकर विद्यार्थियों के समक्ष चुनौती के रूप में प्रस्तुत की जाएँ। इन नयी परिस्थितियों के अनुसार नयी रचना करने में मदद की जाए। जैसे—

- किसी कहानी, व्यंग्य, एकांकी के पात्रों की संख्या को घटा या बढ़ाकर पूरी रचना या रचना के किन्हीं हिस्सों की पुनर्रचना करने को कहें।
- किसी कहानी, व्यंग्य, एकांकी के किसी एक या अधिक महत्वपूर्ण प्रसंगों को हटाकर उनकी रचना की पुनर्रचना करने को कहें।
- पठित पाठ में से थीम को चुनकर विद्यार्थियों से नाटिका तैयार करने तथा प्रस्तुत करने को कहें।
- पाठ के अंश या पूरी रचना पर प्रश्न तैयार करने को कहें। विद्यार्थियों को समूहों में बाँटकर प्रतियोगिता करवाई जाए।
- किसी विषय पर सामग्री एकत्रित करवाकर कक्षा में प्रस्तुत करवाया जाए।
- किसी गद्यांश या पद्यांश को शैली और/या भाषा की दृष्टि से बदलवाकर बुलवाएँ या लिखवाएँ।

कल्पना को विस्तार देने वाले प्रश्न का उदाहरण

नीचे दिया गया प्रश्न बी.एड. कर रहे एक विद्यार्थी मो. याकूब द्वारा अपने शिक्षण-अभ्यास के दौरान उपलब्धि परीक्षण के लिए तैयार किया गया। प्रश्न पर आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों के उत्तर। उत्तरों में वर्तनी का मानकीकरण नहीं किया गया है।

प्रश्न— इन शब्दों का प्रयोग करके किसी कविता की रचना कीजिए— छप से, टप से, थर्र से, फर्र से, सन से

उपरोक्त प्रश्न के जवाब में विद्यार्थियों की अभिव्यक्तियाँ—

1. नदियाँ टप-टप बहती हैं,
चिड़ियाँ फुर्र से उड़ती हैं,
पानी छप-छप करता है,
हम हैं थर्र-थर्र काँपते,
हवा को सनसे भाँपते।

— शिखा सिंह

2. बारिश की बूँदे आईं टप से,
मेंढक कूदा छप से,
हवा आई सन से,
बब्लू काँपा थर्र से,
चिंकी भागी फर्र से,
बारिश में नहाना है,
छप-छप करते जाना है।

— प्रतिभा

3. सन, सन से हवा चल रही है,
मैं थर्र से कांप रही थी,
न जाने कहाँ से एक चिड़िया,
फर्र से उड़ आ गई,
चारों ओर बादल आ गए,
टप-टप वर्षा होने लगी।
छप से मेंढक ताल से बाहर आया,
और वह टर-टर से बोला,
सन-सन से हवा चल रही है।

— भावना

4. छाप, छाप से कूदे मेंढक, बारिश की बूदें
गिरती टप से, हवा ठंडी चले सन से,
चिड़िया को पकड़ते, लेकिन उड़ जाती वो फुर्र से,
कितना बढ़िया है वसंत का महीना,
इससे पहले तो मैं काँपता था थर्र से।

— अकिंत पाल

5. बारिश आई टप टप, टप,
मेंढक कूद छप, छप, छप,
बच्चों को सर्दी लगी थर्र, थर्र, थर्र,
हवा चली सन, सन, सन,
फुर्र, फुर्र पक्षी उड़ाए फुर्र, फर्र।

— सभ्यता

6. बारिश आई बारिश आई,
बूँदें गिरती टप, टप,
बच्चे खेले छप से छप,
फुर्र से भागे यहाँ वहाँ,
थर्र से थर्र काँपे बच्चे,
सन से सन, सन रेल चली,
भागो-भागो रेल चली,
हम भी नाचेंगे,
सब को नचाएँगे।।

— सुलता

7. बारिश आई थर्र से,
हम नहाए छप से,
हम खेले फुर्र से,
हम खेले टप से,
बारिश में,
हम चले सन से।

— तुषार

8. सन से सन से,
फुर्र से फुर्र से आया,
छप से छप से आई,
टप से टप से आई।

— पूजा

9. छप-छप-छप-छप मेंढक आया,
टप-टप-टप-टप पानी टपका,
थर्र से एक मछली आयी,

संग अपने पानी भी लायी,
फुर्र से एक चिड़िया आयी,
सन से हवाएँ चलीं,
सब अपनी जगह को भागे।

— रेखा शर्मा

10. छप से पानी में कूदता है मेंढक,
टप से नल में से पानी गिरता है,
और हम ठंडी में थर्र से काँपते हैं,
और चिड़ियाँ फुर्र से उड़ जाती हैं,
सन से हवा बहती है।

— पार्वती

11. छप छप करती आई टप करके आये राजा,
थर्र-थर्र भागे सैनिक, सन-सन आई प्यारी बिल्ली।

— नीरज

12. एक मेंढक आई छप से,
आज नालका खुला टप से,
एक चीज ऐसी थर्र से,
एक चिड़िया आई फुर्र से,
एक चीज ऐसी सन से।

— रितिका

13. बादल आए बादल आए,
बारिश टप-टप कर आए,
चिड़ियाँ भी फुर्र से उड़ जाए,
दूसरा सन भी आए,
पानी छप-छप कर आए,
हम भी थर्र-थर्र से जाए।

— भावना

14. छप से
वाक्य— जब मैं बारिश में नहा रहा था, तू पानी में छप में कूदा
टप से।
वाक्य— जब पानी नीचे गिरता है तो टप से अवाज़ आती है,
थर्र से।

वाक्य— जब मैंने टी.वी. पर भूत की शकल देखी थी तो मैं थर्र में उचल गया था,
फुर्र से।
वाक्य— जब मेरे पीछे कुत्ता पड़ गया था मैं फुर्र से भग गया था,
सन से।
जब मैं ईनड़या गेठ पर आया तू सन से जल राहा था।

— नाहिद

15. छप से पानी में पैर गया,
टप से बारिश कि बूँदें गिरीं,
थर्र में पानी एक जगह में भर गया,
एक चिड़िया बारिश में नहा रही थी,
तो वो फुर्र से उड़ा गई एक सन से,
एक लड़की बारिश में नहाने लगी।

— माया कुमारी

16. नल में पानी टप से होता है,
हवा सन से चलती है,
मैं पानी में छप से कूद गयी,
चिड़िया फुर्र से उठाती है,
मैं ठंड से थर्र काँप रही थी।

— मोना यादव

17. एक लड़का पानी में छप-छप करता जा रहा था,
उसका दोस्त टप-टप करता आ रहा था,
थर्र से वह अपने घर जा रहा था,
फुर्र करके हवाई जहाज़ आ रहा था,
सन से उसकी घर पर आई।

— अभिषेक

18. पानी की टुटी बंद होने के बाद पानी,
टप-टप टपकने लगा,
मेंढक पानी में छप से कूद गया,
हवा सन से आई मैं थर्र से काप गया,
चिड़िया फुर्र से उड़ गई।

— अमित गिरी

ज़रूरी बातें

प्रश्न बनाने से पहले पाठ के संदर्भ में कुछ बातों पर स्पष्ट समझ बनाने की कोशिश बार-बार होनी चाहिए। जैसे—

1. पाठ पढ़ाने के उद्देश्य क्या हैं?
2. पाठ में महत्वपूर्ण घटनाएँ बिंब, प्रतीक या विचार कौन-कौन से हैं?
3. पाठ के संदर्भ में भाषा के द्वारा क्या-क्या काम लिया जा सकता है?
4. पाठ की अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण घटनाओं, बिंबों, प्रतीकों, विचारों आदि की पहचान करके उनका उपयोग प्रश्न बनाने हेतु किया जाए।

प्रश्न अभ्यास

1. अच्छी आकलन प्रणाली की किन्हीं दो विशेषताओं को समझाइए।
2. सतत और समग्र आकलन का अर्थ समझाते हुए हिंदी के शिक्षण में उसके उपयोग की प्रक्रिया को एक उदाहरण की मदद से समझाइए।
3. निर्माणात्मक तथा योगात्मक आकलन के किन्हीं दो अंतरों को उदाहरण की मदद से समझाइए।
4. निर्माणात्मक तथा योगात्मक आकलन परस्पर पूरक हैं। क्या आप इस बात से सहमत हैं? अपने पक्ष को तर्क सहित समझाइए।
5. सतत और व्यापक आकलन की प्रक्रिया में शिक्षिका/शिक्षक की किन्हीं दो भूमिकाओं को उदाहरण सहित समझाइए।
6. क्या आपको लगता है कि प्रश्न सीखने के अवसरों को सीमित या विस्तृत कर सकते हैं? उदाहरणों सहित समझाइए।
7. किसी पाठ पर भिन्न-भिन्न प्रकृति के पाँच सवाल बनाइए।

भाषा से संवाद

1. दसवीं और बारहवीं कक्षा के किसी भी बोर्ड की परीक्षाओं के हिंदी के प्रश्नपत्रों (पिछले तीन वर्षों) की समीक्षा कीजिए।
2. एक ही सवाल पर बच्चों द्वारा अलग-अलग आए जवाबों पर समूह में चर्चा कीजिए।
3. कक्षा 6–12 तक की हिंदी की पाठ्यपुस्तकों में से ऐसे दस प्रश्न छाँटें, जिनमें भाषा में मूल्यांकन का सृजनात्मक रवैया परिलक्षित होता है। (समूह कार्य)
4. कक्षा छह के किसी बच्चे की प्रथम त्रैमासिक आकलन रिपोर्ट में दिए गए सुझावों का अध्ययन करें। इन सुझावों का बच्चे के भाषायी विकास में इस्तेमाल करने के लिए युक्तियाँ सुझाएँ।

कक्षा शिक्षण के दौरान

1. उच्च प्राथमिक स्तर पर आकलन एवं मूल्यांकन की मौजूदा प्रक्रिया पर रिपोर्ट तैयार कीजिए।
2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित आकलन स्रोत पुस्तिका 'भाषा हिंदी' पढ़ें तथा इसमें आए आकलन संबंधी क्रियाकलापों को कक्षा 6–12 के अनुरूप विकसित करते हुए एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

प्यारे बच्चो!

यदि कोई आपको अनुचित ढंग से स्पर्श करे और यह स्पर्श आपको अच्छा न लगे तो, आप चुप न रहें। आप

1. स्वयं को इसका दोष न दें;
2. इस बारे में किसी ऐसे व्यक्ति को बताएँ जिस पर आप भरोसा करते हो;
3. आप **पॉक्सो ई.बॉक्स** के माध्यम से राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग को भी इस बारे में सूचित कर सकते हैं।

जब आपको कोई अनुचित ढंग से स्पर्श करता है तो आपको बुरा लग सकता है, आप दुविधाग्रस्त और असहाय अनुभव कर सकते हैं

आपको "बुरा" अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आपकी गलती नहीं है

इस बटन को दबाएँ

पॉक्सो ई.बॉक्स NCPCR@gov.in पर उपलब्ध है।

नए समाज की ओर
Towards a new dawn

यदि आपकी आयु 18 वर्ष से कम है और आप मुसीबत में हैं अथवा दुविधाग्रस्त हैं अथवा आपके साथ दुर्व्यवहार किया गया है अथवा संकट में हैं अथवा किसी ऐसे बच्चे को जानते हैं...

1098 पर कॉल करें...क्योंकि कुछ अच्छे नंबर जीवन बदल देते हैं।

चाइल्ड लाइन 1098 - विपत्ति में बच्चों के लिए 24 घंटे निःशुल्क राष्ट्रीय आपातकालीन फ़ोन सेवा, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के सहयोग से चाइल्ड लाइन इंडिया फ़ाउंडेशन की पहल है।

नए समाज की ओर
Towards a new dawn

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

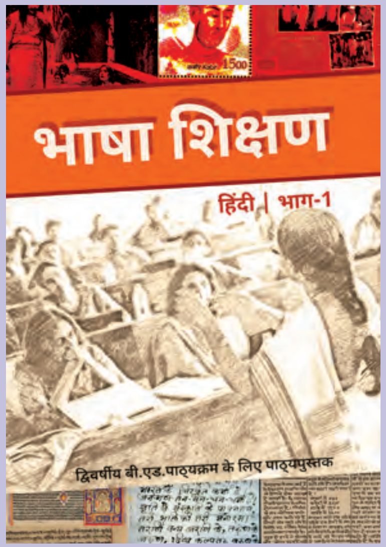

₹ 165.00/pp.204
Code — 1370
ISBN — 978-93-5292-018-1

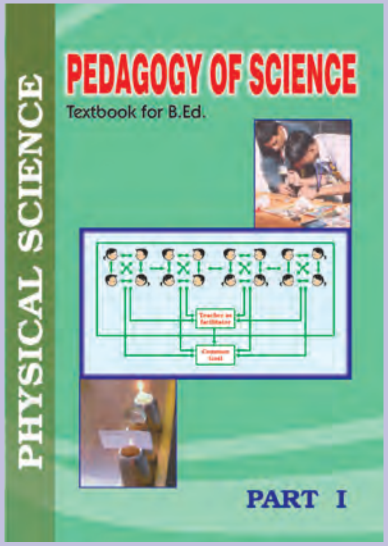

₹ 175.00/pp.302
Code — 13093
ISBN — 978-93-5007-224-0

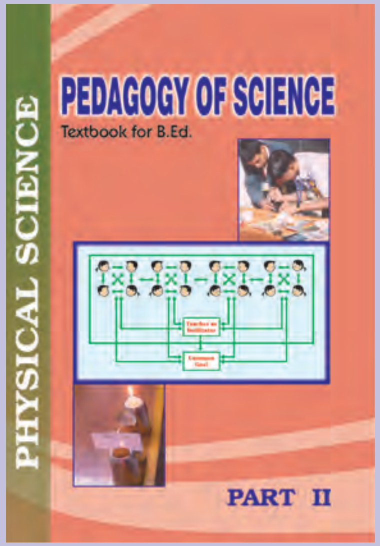

₹ 130.00/pp.550
Code — 13094
ISBN — 978-93-5007-225-7

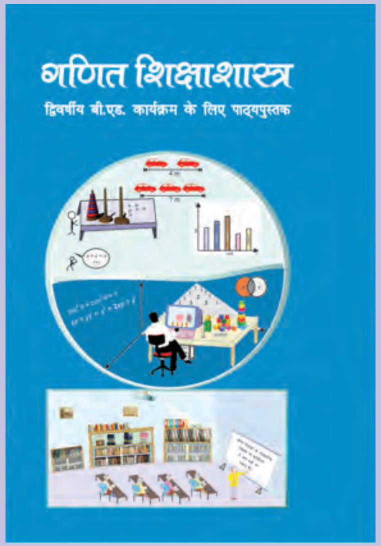

₹ 160.00/pp.330
Code — 13084
ISBN — 978-93-5007-210-3

अधिक जानकारी के लिए कृपया www.ncert.nic.in देखिए अथवा कॉपीराइट पृष्ठ पर दिए गए पतों पर व्यापार प्रबंधक से संपर्क करें।

1371

विद्ययाऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-93-5292-152-2